स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

जनवरी, 2019
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

पी एल डी (सी. डी)-1-2019 आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2019 अंक - 1

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
अविनाश शुक्ला

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2019) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website ➡ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2019 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

मैं, इस संपादकीय के माध्यम से आपका ध्यान भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 38 के परिप्रेक्ष्य में विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित विधि पत्रिकाओं और पुस्तकों के महत्व की ओर आकृष्ट करता हूं । यह धारा विधि पुस्तकों में समाविष्ट विधि के कथनों की सुसंगतता के संबंध में उपबंध करती है । इस धारा के अनुसार जब न्यायालय को देश की विधि के बारे में अपनी राय निर्मित करनी होती है, तब विधि का कोई भी कथन, जो किसी ऐसी पुस्तक में समाविष्ट है जो देश की सरकार के प्राधिकार के अधीन मुद्रित या प्रकाशित है, सुसंगत होगा । यदि सरकार के प्राधिकार के अधीन मुद्रित या प्रकाशित पत्रिका या पुस्तक में कोई विधि या देश के न्यायालयों के विनिर्णयों की रिपोर्ट समाविष्ट है, तो वह विधि या विनिर्णयों की रिपोर्ट न्यायालय के प्रयोजनार्थ सुसंगत होगी । अत: यह स्पष्ट है कि विधि साहित्य प्रकाशन जो देश की सरकार के प्राधिकार के अधीन विधि पत्रिकाओं और पुस्तकों का प्रकाशन करता है, द्वारा प्रकाशित विधि पत्रिकाओं और पुस्तकों में समाविष्ट विधि का कोई भी कथन या देश के न्यायालयों के विनिर्णयों की रिपोर्ट न्यायालय द्वारा देश की विधि के बारे में अपनी राय निर्मित किए जाने के प्रयोजनार्थ सुसंगत होगी ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2019

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अमन राणा (श्री) **बनाम** मेघालय राज्य	53
इक़रार अहमद **बनाम** शिव देवी और एक अन्य	1
चन्देश्वर प्रसाद **बनाम** अंजलि कुमारी	43
ननकू रामबरन **बनाम** रामचरण मनछर और अन्य	23
भक्तवत्सल सिंह राजपूत **बनाम** श्रीमती वन्दना राजपूत	15
महेन्द्र नाथ सोरल और अन्य **बनाम** रविन्द्र नाथ सोरल और अन्य	114
मोहम्मद अकबर लोन **बनाम** महानिदेशक, प्रसार भारती	28
रमेश चन्द कोयरी **बनाम** चन्दन कोयरी और अन्य	7
संतोष देवी और अन्य **बनाम** जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड	121
हुकमी चन्द मोसून **बनाम** कुशाल चन्द दुग्गड़	104

संसद् के अधिनियम

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 39

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36)

– धारा 5 – अपील फाइल किए जाने में कारित विलम्ब का क्षमा किया जाना – अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ परिसीमा का पालन पूरी कठोरता के साथ किया जाना चाहिए और न्यायालय को साम्यापूर्ण आधारों पर परिसीमा की अवधि को विस्तारित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है – यदि कारित विलम्ब के कारण अपर्याप्त है और न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अपील फाइल किए जाने में सम्यक् तत्परता का पालन नहीं किया गया तो परिसीमा को विस्तारित किए जाने के द्वारा विलम्ब को क्षमा नहीं किया जा सकता चाहे अपील फाइल किए जाने वाला पक्ष सरकार ही क्यों न हो ।

मोहम्मद अकबर लोन बनाम **महानिदेशक, प्रसार भारती** 28

भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 (1882 का 5)

– धारा 52 – मौखिक अनुज्ञप्ति – मंजूरी – अनुज्ञप्ति मौखिक हो सकती है – अनुज्ञप्ति को सदैव लिखित रूप में होना आवश्यक नहीं है ।

ननकू रामबरन बनाम **रामचरण मनछर और अन्य** 23

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 166 – दुर्घटना प्रतिकर – खेत में बिजली का तार टूट कर गिर जाने और बिजली के करंट से मृत्यु के परिणामस्वरूप बिजली विभाग की लापरवाही के आधार पर प्रतिकर राशि हेतु आवेदन – ऐसी दुर्घटना के कारण मृत्यु के मामलों में प्रतिकर राशि की गणना मोटर यान अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत होगी ।

संतोष देवी और अन्य बनाम **जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड** 121

पृष्ठ संख्या

– धारा 166 – दुर्घटना प्रतिकर – मृतक के आश्रितों को प्रेम और स्नेह की मद में प्रतिकर नहीं प्रदान किया जा सकता क्योंकि इस मद को पारस्परिक मद नहीं माना जा सकता ।

संतोष देवी और अन्य बनाम **जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड** 121

– धारा 173 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5] – मोटर दुर्घटना दावा – अधिकरण द्वारा पारित निर्णय और पंचाट के विरुद्ध अपील – परिसीमा – दावे में विरोधी पक्षकार द्वारा लिखित कथन फाइल करने के पश्चात् मामले में पैरवी छोड़ देना – अधिकरण द्वारा निर्णय और पंचाट पारित करने के पश्चात् विलंब से पुनःस्थापन का आवेदन फाइल किया जाना – खारिजी – परिसीमा की संगणना दावे में निर्णय पारित करने की तारीख से की जाएगी न कि पुनःस्थापन का आवेदन खारिज करने की तारीख से – अतः पुनःस्थापन आवेदन की खारिजी में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

इक़रार अहमद बनाम **शिव देवी और एक अन्य** 1

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 6 – क़ब्जे की वापसी के लिए वाद – वादी द्वारा स्वयं को वाद-संपत्ति का किराएदार बताया जाना – किराएदार द्वारा मूल किराएदारी करार सबूत में पेश न किया जाना – करार की फोटो प्रति और रसीदों में किराएदार होने का उल्लेख न होना – चूंकि वादी धारा 6 की शर्तों के अनुसार अभिकथित बेक़ब्जा किए जाने की तारीख़ को संपत्ति पर अपना कब्जा साबित करने में विफ़ल रहा है – अतः न्यायालय वादी को वाद-संपत्ति का क़ब्जा वापस नहीं दिला सकता ।

रमेश चन्द कोयरी बनाम **चन्दन कोयरी और अन्य** 7

पृष्ठ संख्या

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4)

– धारा 117 – कृषि अनुज्ञप्ति – संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 117 का प्रवर्तन – अधिनियम की धारा 117 कृषि से संबंधित अनुज्ञप्ति को लागू होती है ।

ननकू रामबरन बनाम **रामचरण मनछर और अन्य** 23

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 5, 6, 8, 10, 11 और 15(1) – संविधान के प्रारम्भ पर नागरिकता – राज्य द्वारा जन्मस्थान के आधार पर विभेद न किया जाना – भारत के संविधान के प्रारम्भ पर प्रत्येक नागरिक, जिसका भारत के राज्यक्षेत्र में अधिवास है या जो भारत के राज्यक्षेत्र में जन्म ले चुका था या जिसके माता या पिता में से एक भारत के राज्यक्षेत्र में जन्मा था या जो संविधान के ठीक पहले कम से कम 5 वर्ष तक भारत के राज्यक्षेत्र में मामूली तौर से निवासी रहा हो, भारत का नागरिक होगा । साथ ही ऐसे व्यक्ति जिन्होंने ऐसे राज्यक्षेत्र से, जो इस समय पाकिस्तान या बांग्लादेश के अन्तर्गत है, भारत के राज्यक्षेत्र को प्रव्रजन किया है, संविधान के प्रारम्भ पर भारत का नागरिक समझा जाएगा ।

अमन राणा (श्री) बनाम **मेघालय राज्य** 53

– अनुच्छेद 5, 6, 8, 10, 11 और 15(1) – संविधान के प्रारम्भ पर नागरिकता – राज्य द्वारा जन्मस्थान के आधार पर विभेद न किया जाना – भारत में रहने वाले हिन्दुओं, सिखों, जैनियों, बौद्धों, ईसाइयों, खासियों, जैनतियों और गारो, चाहे वह किसी भी तारीख पर भारत में आए हों, को भारत का नागरिक घोषित किया जाना चाहिए और वे जिनको भविष्य में भारत में आना है, पर भी भारत के नागरिक के रूप में विचार किया जाना चाहिए – भारत सरकार द्वारा समस्त भारतीय नागरिकों के लिए एक

पृष्ठ संख्या

समरूप विधि बनायी जानी चाहिए और समस्त भारतीयों को देश की विधि और संविधान का पालन करने के लिए बाध्य होना चाहिए – ऐसा कोई भी व्यक्ति जो भारतीय विधियों और संविधान का विरोध करता है, को देश का नागरिक नहीं माना जा सकता ।

अमन राणा (श्री) बनाम **मेघालय राज्य** 53

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 65 – द्वितीयक साक्ष्य – किराएदार द्वारा किराएदार और मकान-मालिक के बीच हुए करार की फोटो प्रति साक्ष्य में पेश की जानी – किराएदार द्वारा इस संबंध में कुछ न कहा जाना कि किन परिस्थितियों में पक्षकारों के बीच अभिकथित करार की तात्पर्यित फोटो प्रति साक्ष्य में पेश की गई है – अभिकथित करार में किराएदार के नाम का उल्लेख न होना – किराएदार द्वारा यह सबूत न देना कि वह किस प्रकार से करार से संबद्ध था – द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए फाइल आवेदन में आधारभूत तथ्यों का उल्लेख न होने के कारण ऐसा आवेदन मंजूर नहीं किया जा सकता ।

हुकमी चन्द मोसून बनाम **कुशाल चन्द दुग्गड़** 104

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 20 और नियम 18(2) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96] – जब न्यायालय किसी अचल संपत्ति के विभाजन के या उसमें के अंश पर पृथक् कब्जे के लिए डिक्री पारित करता है तब यदि न्यायालय द्वारा उस संपत्ति का विभाजन या पृथक्करण बिना अतिरिक्त जांच के सुविधापूर्वक नहीं किया जा सकता, तो संपत्ति में हितबद्ध पक्षकारों के अधिकारों की घोषणा करने वाली और ऐसे अतिरिक्त निदेश देने वाली,

पृष्ठ संख्या

जो अपेक्षित हों, प्रारंभिक डिक्री पारित कर सकता है ।

महेन्द्र नाथ सोरल और अन्य बनाम **रविन्द्र नाथ सोरल और अन्य** 114

– धारा 114 – पुनर्विलोकन की परिधि – पुनर्विलोकन की अवधि अत्यन्त सीमित होती है और पुनर्विलोकन के प्रयोजनार्थ मामले में पुनः बहस के लिए फोरम उपलब्ध नहीं कराया जा सकता – पुनर्विलोकन को न्यायालय के विचार/राय को परिवर्तित करने के लिए औजार के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता ।

मोहम्मद अकबर लोन बनाम **महानिदेशक, प्रसार भारती** 28

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13(1)(i) और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 1, नियम 10(2) – जारकर्म के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्ज़ी – अभिकथित जारकर्म-कर्ता को पक्षकार बनाने के लिए आवेदन – यद्यपि 1955 का अधिनियम जारकर्म-कर्ता को कार्यवाहियों का पक्षकार बनाने के लिए कोई उपबंध नहीं करता तथापि, जहां विवाह-विच्छेद की अर्जी में अन्तर्वलित प्रश्नों के न्यायनिर्णयन के लिए उसकी उपस्थिति आवश्यक हो वहां ऐसे जारकर्म-कर्ता को कार्यवाहियों का पक्षकार बनाया जा सकता है ।

भक्तवत्सल सिंह राजपूत बनाम **श्रीमती वन्दना राजपूत** 15

– धारा 13(1)(i-क) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्ज़ी – पत्नी द्वारा क्रूरता बरते जाने का आरोप – पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद का विरोध किया जाना – पक्षकारों द्वारा लगभग 12 वर्षों से पृथक्-पृथक् रहना – पत्नी द्वारा अपील प्रक्रम पर पति के साथ विवाह-बंधन निभाने से इनकार –

पृष्ठ संख्या

पत्नी को उसकी इच्छा के विरुद्ध पति के साथ रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता – ऐसी स्थिति में विवाह विघटन अनुज्ञात किया जाना उचित होगा तथापि, पत्नी निर्वाह-व्यय की हक़दार होगी ।

चन्दरेश्वर प्रसाद बनाम **अंजलि कुमारी** 43

इक़रार अहमद

बनाम

शिव देवी और एक अन्य

तारीख 17 जुलाई, 2018

न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 173 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5] – मोटर दुर्घटना दावा – अधिकरण द्वारा पारित निर्णय और पंचाट के विरुद्ध अपील – परिसीमा – दावे में विरोधी पक्षकार द्वारा लिखित कथन फाइल करने के पश्चात् मामले में पैरवी छोड़ देना – अधिकरण द्वारा निर्णय और पंचाट पारित करने के पश्चात् विलंब से पुनःस्थापन का आवेदन फाइल किया जाना – खारिजी – परिसीमा की संगणना दावे में निर्णय पारित करने की तारीख से की जाएगी न कि पुनःस्थापन का आवेदन खारिज करने की तारीख से – अतः पुनःस्थापन आवेदन की खारिजी में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

अपीलार्थी ने वर्तमान अपील 2011 की दावा याचिका सं. 690014, शिव देवी बनाम इकरार अहमद और अन्य वाले मामले में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 14 मार्च, 2016 को पारित निर्णय और पंचाट के विरुद्ध विलंब से फाइल की है । अपीलार्थी ने अपील फाइल करने में विलंब को माफ करने के लिए एक आवेदन भी फाइल किया है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विद्वान् अधिकरण ने पुनः स्थापन के आवेदन को खारिज करते हुए तारीख 14 मार्च, 2016 को निर्णय और पंचाट पारित किया है और अपीलार्थी ने पंचाट के संबंध में जानकारी प्राप्त होने के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था जो तारीख 13 नवंबर, 2017 को खारिज कर दिया गया था । जब अपीलार्थी को तारीख 13 नवंबर, 2017 के आदेश के बारे में पता चला तो उसने अपने निचले न्यायालय के काउंसेल से उच्च न्यायालय के समक्ष अपील

फाइल करने के लिए सम्पर्क किया । कुछ समय के पश्चात् उसे यह पता चला कि अपील फाइल नहीं की गई है और उसके काउंसेल ने उसे यह सलाह दी कि वह उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने के लिए उच्च न्यायालय के किसी अधिवक्ता से सम्पर्क करे । उसने उच्च न्यायालय के एक अधिवक्ता से सम्पर्क किया और वर्तमान काल-वर्जित अपील फाइल की । अपील खारिज करते हए,

अभिनिर्धारित – अतः 13 नवंबर, 2017 के पश्चात् यह अपील तारीख 31 जनवरी, 2018 को फाइल की गई है और वह भी 2 मास से अधिक की अवधि के पश्चात् तथापि, एक वर्ष 29 दिनों के विलंब के लिए आवेदन में कोई समुचित कारण उल्लिखित नहीं किया गया है । अपीलार्थी ने अपील फाइल करने की समय अवधि गुजरने के पश्चात् अर्थात् 11 मास के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था इसलिए अपीलार्थी अपील फाइल करने की अवधि के पर्यवसान के पश्चात् संस्थित उक्त कार्यवाहियों का कोई फायदा पाने का हकदार नहीं है, विशेषतया वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में । वर्तमान मामले में अपीलार्थी उपस्थित हुआ था और उसने अपना लिखित कथन फाइल किया था और इसके पश्चात् वह जानबूझकर कार्यवाहियों में हाजिर नहीं हुआ । अपीलार्थी यह प्रकट करने में विफल रहा है कि कब और किस प्रकार उसे आदेशों के बारे में पता चला । इस तथ्य से यह भी उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी को कार्यवाहियों और उनमें पारित आदेशों की पूर्ण जानकारी थी और उसने विलंब के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया है । इस तथ्य से यह भी स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने अनुपूरक शपथपत्र के लिए समय लेने के पश्चात् शपथपत्र फाइल करने से इनकार कर दिया । उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थी द्वारा आवेदन में दिया गया स्पष्टीकरण सद्भाविक प्रतीत नहीं होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि उसने दावा अधिकरण के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन केवल विलंब माफ करने के अधिकार को सृजित करने के लिए फाइल किया है । अपीलार्थी द्वारा दी गई यह दलील पूर्ण रूप से गलत और खारिज किए जाने योग्य है कि अपील सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन पर पारित आदेश की तारीख से समयावधि के भीतर फाइल की गई है । परिसीमा निर्णय और पंचाट की तारीख से संगणित की जाएगी और तद्नुसार अपीलार्थी को उक्त तारीख से स्पष्टीकरण देना था, जिसे देने में वह विफल रहा है । अपीलार्थी कोई

पर्याप्त कारण अर्थात् दिन-प्रतिदिन का स्पष्टीकरण देने में विफल रहा है । विलंब माफी के लिए आवेदन एतद्द्वारा खारिज किया जाता है । तद्नुसार अपील खारिज की जाती है । (पैरा 7, 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2012] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1629 =
(2012) 5 एस. सी. सी. 157 :
मणि देवराज शाह बनाम **बरिहान नगर निगम** । 8

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की प्रथम अपील सं. 97.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री साकेत कुमार गुप्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायमूर्ति रजनीश कुमार – अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने तारीख 4 जुलाई, 2018 को अनुपूरक शपथपत्र फाइल करने के लिए समय चाहा था । आज उन्होंने यह निवेदन किया कि वह अनुपूरक शपथपत्र फाइल नहीं करना चाहते हैं और इसलिए उन्होंने सुनवाई का अनुरोध किया ।

2. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल को सुना गया ।

3. अपीलार्थी ने वर्तमान अपील 2011 की दावा याचिका सं. 690014, शिव देवी बनाम इकरार अहमद और अन्य वाले मामले में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 14 मार्च, 2016 को पारित निर्णय और पंचाट के विरुद्ध विलंब से फाइल की है । अपीलार्थी ने अपील फाइल करने में विलंब को माफ करने के लिए एक आवेदन भी फाइल किया है ।

4. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विद्वान् अधिकरण ने पुनः स्थापन के आवेदन को खारिज करते हुए तारीख 14 मार्च, 2016 को निर्णय और पंचाट पारित किया है और अपीलार्थी ने पंचाट के संबंध में जानकारी प्राप्त होने के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था जो तारीख 13 नवंबर, 2017 को खारिज कर दिया गया था । जब अपीलार्थी को तारीख 13 नवंबर, 2017 के आदेश के बारे में पता चला तो उसने

अपने निचले न्यायालय के काउंसेल से उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने के लिए सम्पर्क किया । कुछ समय के पश्चात् उसे यह पता चला कि अपील फाइल नहीं की गई है और उसके काउंसेल ने उसे यह सलाह दी कि वह उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने के लिए उच्च न्यायालय के किसी अधिवक्ता से सम्पर्क करे । उसने उच्च न्यायालय के एक अधिवक्ता से सम्पर्क किया और वर्तमान काल-वर्जित अपील फाइल की ।

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन अपने 2012 के प्रकीर्ण आवेदन सं. 244-सी पर तारीख 13 नवंबर, 2017 को पारित आदेश की तारीख से परिसीमा के भीतर अपील फाइल की है और इसलिए अपीलार्थी द्वारा जानबूझकर कोई गलती नहीं की गई है और यह केवल एक मानव त्रुटि है और अपीलार्थी ने नासमझी में विलंब किया है । अतः अपील फाइल करने में विलंब को माफ किया जाए ।

6. मैंने अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों पर विचार किया है । अपीलार्थी 2011 की दावा याचिका सं. 690014 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष उपस्थित हुआ था और उसने अपना लिखित कथन फाइल किया था । इसके पश्चात् उसने स्वेच्छापूर्वक कार्यवाहियों में पैरवी छोड़ दी । विद्वान् अधिकरण ने तारीख 14 मार्च, 2016 को निर्णय और पंचाट पारित किया था । अपीलार्थी ने अपने आवेदन में यह प्रकट नहीं किया कि उसे कब और किस प्रकार तारीख 14 मार्च, 2016 के निर्णय और पंचाट की जानकारी प्राप्त हुई और पुनः कब सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन अपीलार्थी के आवेदन पर तारीख 13 नवंबर, 2017 के आदेश के बारे में पता चला । ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी को मामले में कार्यवाहियों की और उनमें पारित आदेशों की पूर्ण जानकारी थी । विद्वान् अधिकरण ने उसके आवेदन पर विचार करने के पश्चात् यह भी पाया कि अपीलार्थी को तारीख 14 मार्च, 2016 के निर्णय और पंचाट की जानकारी थी । दावा अधिकरण ने आवेदन तारीख 13 नवंबर, 2017 को निम्न निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए खारिज कर दिया :–

> "अभिलेख से यह भी प्रकट होता है कि जैसा कि आवेदक द्वारा स्वीकार किया गया है कि वह मामले में उपस्थित हुआ था और उसने वकालतनामा तथा लिखित कथन फाइल किया था । उसने लिखित कथन फाइल करने के पश्चात् मामले की प्रगति के बारे में सतर्कता

नहीं बरती । इस आवेदन में उपलब्ध प्रतिरक्षा आधारों को विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा मोटर यान अधिनियम की धारा 170 के अधीन फाइल किए गए अपने आवेदन सी-22 में प्रयुक्त किया है जिसे तारीख 18 नवंबर, 2015 को मंजूर किया गया था । अब आवेदक स्वयं जानबूझकर की गई अपनी असावधानी का कोई फायदा नहीं ले सकता और उसे न्यायालय द्वारा पर्याप्त अवसर दिया गया था चूंकि उसे कार्यवाहियों की पूर्ण जानकारी थी इसलिए तारीख 14 मार्च, 2016 के निर्णय को अपास्त करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है । अतः आवेदन खारिज किए जाने योग्य है ।"

7. अतः 13 नवंबर, 2017 के पश्चात् यह अपील तारीख 31 जनवरी, 2018 को फाइल की गई है और वह भी 2 मास से अधिक की अवधि के पश्चात् तथापि, एक वर्ष 29 दिनों के विलंब के लिए आवेदन में कोई समुचित कारण उल्लिखित नहीं किया गया है । अपीलार्थी ने अपील फाइल करने के समय अवधि गुजरने के पश्चात् अर्थात् 11 मास के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था इसलिए अपीलार्थी अपील फाइल करने की अवधि के पर्यवसान के पश्चात् संस्थित उक्त कार्यवाहियों का कोई फायदा पाने का हकदार नहीं है, विशेषतया वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में । वर्तमान मामले में अपीलार्थी उपस्थित हुआ था और उसने अपना लिखित कथन फाइल किया था और इसके पश्चात् वह जानबूझकर कार्यवाहियों में हाजिर नहीं हुआ । अपीलार्थी यह प्रकट करने में विफल रहा है कि कब और किस प्रकार उसे आदेशों के बारे में पता चला । इस तथ्य से यह भी उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी को कार्यवाहियों और उनमें पारित आदेशों की पूर्ण जानकारी थी और उसने विलंब के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया है । इस तथ्य से यह भी स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने अनुपूरक शपथपत्र के लिए समय लेने के पश्चात् शपथपत्र फाइल करने से इनकार कर दिया ।

8. उच्चतम न्यायालय ने **मणि देवराज शाह** बनाम **बरिहान नगर निगम**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"23. इस बात पर बल दिए जाने की आवश्यकता है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 और अन्य समान कानूनों के अधीन शक्ति के प्रयोग में एक उदारतापूर्ण और न्यायपूर्ण मत लिए जाने की

[1] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1629 = (2012) 5 एस. सी. सी. 157.

आवश्यकता है तथापि, न्यायालय इस तथ्य की भी अनदेखी नहीं कर सकते कि सफल मुकदमेदार ने आक्षेपाधीन निर्णय के आधार पर कतिपय अधिकार अर्जित कर लिए हैं और मुकदमेदारी के विभिन्न प्रक्रमों पर खर्चों के अतिरिक्त अत्यधिक समय भी लगा है ।

24. वर्तमान मामले की तथ्यात्मक स्थिति में 'पर्याप्त कारण' पद का क्या अर्थ लगाया जाएगा, यह बात विस्तृत रूप से स्पष्टीकरण की सद्भाविक प्रकृति पर निर्भर होगी । यदि न्यायालय यह पाता है कि आवेदक की ओर से कोई असावधानी नहीं बरती गई है और विलंब के लिए उपदर्शित कारण में कोई सद्भाविक कमी नहीं है तब वह विलंब को माफ कर सकता है । इसके प्रतिकूल यदि आवेदक द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण बनावटी पाया जाता है या वह अपने हित की कार्यवाहियों में आरंभ से ही असावधान पाया जाता है तो विलंब को माफ न करने के लिए अधिकारिता का वैधानिक प्रयोग होगा ।"

9. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थी द्वारा आवेदन में दिया गया स्पष्टीकरण सद्भाविक प्रतीत नहीं होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि उसने दावा अधिकरण के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन केवल विलंब माफ करने के अधिकार को सृजित करने के लिए फाइल किया है । अपीलार्थी द्वारा दी गई यह दलील पूर्ण रूप से गलत और खारिज किए जाने योग्य है कि अपील सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन पर पारित आदेश की तारीख से समयावधि के भीतर फाइल की गई है । परिसीमा निर्णय और पंचाट की तारीख से संगणित की जाएगी और तद्नुसार अपीलार्थी को उक्त तारीख से स्पष्टीकरण देना था, जिसे देने में वह विफल रहा है । अपीलार्थी कोई पर्याप्त कारण अर्थात् दिन-प्रतिदिन का स्पष्टीकरण देने में विफल रहा है ।

10. विलंब माफी के लिए आवेदन एतद्द्वारा खारिज किया जाता है ।

11. तद्नुसार अपील खारिज की जाती है ।

12. खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

रमेश चन्द कोयरी

बनाम

चन्दन कोयरी और अन्य

तारीख़ 19 सितंबर, 2018

न्यायमूर्ति विश्वजीत बसु

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 6 – क़ब्जे की वापसी के लिए वाद – वादी द्वारा स्वयं को वाद-संपत्ति का किराएदार बताया जाना – किराएदार द्वारा मूल किराएदारी करार सबूत में पेश न किया जाना – करार की फोटो प्रति और रसीदों में किराएदार होने का उल्लेख न होना – चूंकि वादी धारा 6 की शर्तों के अनुसार अभिकथित बेक़ब्जा किए जाने की तारीख़ को संपत्ति पर अपना कब्जा साबित करने में विफ़ल रहा है – अतः न्यायालय वादी को वाद-संपत्ति का क़ब्जा वापस नहीं दिला सकता ।

वाद में आवेदक ने यह अभिकथित किया है कि वह उक्त संपत्ति का 300/- रुपए मासिक की दर से किराएदार है जो अंग्रेजी कलेण्डर मास के अनुसार मोहम्मद इसराइल, मुख्तारूल इस्लाम को देय है और तारीख 25 जनवरी, 2006 के एक करार के आधार पर श्री एम. जलील (अब मृतक) विरोधी पक्षकार सं. 6(क) से 6(च) का हिताधिकारी है । आवेदक ने वाद में यह अभिकथित किया है कि उसे प्रतिवादी सं. 1, 2 और 3 द्वारा तारीख 26 सितंबर, 2008 को वाद संपत्ति से उसकी सम्मति के बिना और विधि की सम्यक् प्रक्रिया के बिना बेकब्जा किया गया है । आवेदक ने बेकब्जा किए जाने के तुरन्त पश्चात् वाद संपत्ति से बेकब्जा करने के बारे में शिकायत करते हुए पुलिस अधिकारियों के समक्ष लिखित परिवाद संस्थित किया था । विरोधी पक्षकार सं. 1, 2 और 3 ने मुख्य प्रतिवादियों के रूप में लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया है । उक्त प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथन में वादी के इस अभिकथन से प्रबल रूप से इनकार किया है कि उन्होंने तारीख 26 सितंबर, 2008 को वाद संपत्ति से वादी को बलपूर्वक बेकब्जा किया था । उक्त प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथन में स्पष्टतया इस कथन से भी इनकार किया है कि वादी उक्त संपत्ति का किराएदार है और वह एक किराएदार के रूप में संपत्ति पर काबिज था ।

वादी ने उक्त लिखित कथन का अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए विरोध किया कि रघुनाथ कोयरी नामक व्यक्ति प्रतिवादी-मकान-मालिकों का उक्त संपत्ति का मूल किराएदार था । उक्त रघुनाथ कोयरी की मृत्यु के पश्चात् उक्त किराएदारी उसकी विधवा दुर्गा देवी को न्यागत हो गई थी । प्रतिवादी सं. 1, 2 और 3 उक्त रघुनाथ कोयरी और गौरी देवी के नातेदार होने के नाते वाद संपत्ति पर काबिज हो गए थे । वादी का वाद खारिज किए जाने पर वादी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के विद्वान् अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन किया गया । विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 ऐसे किसी व्यक्ति को, जिसे ऐसी किसी स्थावर संपत्ति से जिस पर वह काबिज था, विधि की प्रक्रिया के सिवाय बेदखल किया गया है, प्रतिस्थापित करने के लिए विशिष्ट प्रकार की शिकायत के लिए विशेष और द्रुतगामी उपचार के बारे में उपबंध करती है । अत: उपर्युक्त अधिनियम की धारा 6 का आश्रय लेने के लिए बेकब्जा करने की तारीख को स्थावर संपत्ति के ऊपर वादी का कब्जा होना पूर्ववर्ती शर्त है । ऐसी प्रकृति की कार्यवाहियों में ऐसा कब्जा होने के बारे में हकदारी के संबंध में विवेचना करना सुसंगत नहीं है । वर्तमान वाद में के वादी ने वाद संपत्ति के ऊपर अपनी किराएदारी साबित करने के लिए कतिपय दस्तावेज फाइल किए हैं तथापि, उक्त दस्तावेज वाद संपत्ति के ऊपर वादी के कब्जे को साबित नहीं करते । उक्त दस्तावेज तारीख 25 जनवरी, 2006 के किराएदारी करार प्रदर्श 4 की सत्यापित फोटो प्रति है जिसमें यह उल्लिखित नहीं है कि उक्त करार के अनुसरण में वादी को वाद संपत्ति के ऊपर कब्जा दिया गया था और किराया रसीदें भी वाद संपत्ति के ऊपर वादी के कब्जे को साबित नहीं करतीं, विशेषतया तब जब मकान-मालिक ने स्वयं डी. डब्ल्यू.-2 के रूप में पेश होकर उक्त दस्तावेजों की सत्यता को विवादित किया है । पुलिस शिकायतें स्वयं लिखाए गए दस्तावेज हैं और किसी अन्य साक्ष्य के अभाव में ऐसे दस्तावेज सहायता नहीं करते और उक्त शिकायतों के आधार पर पुलिस वाद संपत्ति के ऊपर वादी के कब्जे के संबंध में निष्कर्ष नहीं निकाल सकती । वादी ज्यादा से ज्यादा उक्त दस्तावेज़ों का किसी वाद में अवलंब ले सकता है या वाद संपत्ति के ऊपर अपने किराएदारी के अधिकार को साबित करने के लिए कार्यवाही में अवलंब ले सकता है । वर्तमान वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष

अधिनियम, 1963 की धारा 6 के अधीन होने के कारण ऐसे किसी प्रश्न की परीक्षा पूर्णतया अनावश्यक और असंगत है । वादी की तारीख 2 दिसंबर, 2014 को की गई प्रतिपरीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि उसने यह स्वीकार किया है कि पूर्व में रघुनाथ कोयरी वाद संपत्ति का किराएदार था । उसने यह भी स्वीकार किया है कि वह रघुनाथ कोयरी और उसकी पत्नी दुर्गा देवी कोयरी को जानता था और रघुनाथ कोयरी की मृत्यु हो चुकी है । उसने यह भी कथन किया है कि उसकी रघुनाथ कोयरी से कोई पारिवारिक नातेदारी नहीं है । उसने यह भी कथन किया है कि मकान-मालिक द्वारा रघुनाथ कोयरी के विरुद्ध बेदखली वाद फाइल किया गया है । उसने अपनी उक्त प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि रघुनाथ कोयरी के दो पुत्र हैं । अतः यह स्वीकृत स्थिति है कि वाद संपत्ति का किराएदार उक्त रघुनाथ कोयरी था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उक्त किराएदारी उक्त किराएदार के वारिसों को न्यागत हो गई और इसलिए मकान-मालिक ने उक्त किराएदार के विरुद्ध बेदखली वाद फाइल किया है । वादी की प्रतिपरीक्षा से यह स्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि वाद संपत्ति का कब्जा वादी को अभिकथित बेकब्जा करने की तारीख पर वादी के पास नहीं था । जहां वादी वाद संपत्ति के ऊपर अपना कब्जा साबित करने में विफल रहा है वहां वह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 के उपबंधों का आश्रय लेकर उक्त कब्जा वापस लेने का हकदार नहीं है । (पैरा 10, 11, 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1968] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1165 :
नायर सर्विस सोसायटी लिमिटेड बनाम **के. सी. एलेक्ज़ेन्डर और अन्य ;** 8, 13

[1968] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 620 :
लल्लू यशवंत सिंह बनाम **राव जगदीश सिंह और अन्य ।** 8, 13

सिविल पुनरीक्षणीय अधिकारिता : 2017 का सी. ओ. सं. 3702.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री शिव नाथ गांगुली

विरोधी पक्षकार की ओर से सर्वश्री स्वरूप बनर्जी और अरिन्दम चटर्जी

न्यायमूर्ति विश्वजीत बसु – विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 के अधीन वाद में के वादी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया है ।

2. वाद में आवेदक ने यह अभिकथित किया है कि वह उक्त संपत्ति का 300/- रुपए मासिक की दर से किराएदार है जो अंग्रेजी कलेण्डर मास के अनुसार मोहम्मद इसराइल, मुख्तारूल इस्लाम को देय है और तारीख 25 जनवरी, 2006 के एक करार के आधार पर श्री एम. जलील (अब मृतक) विरोधी पक्षकार सं. 6 (क) से 6(च) का हिताधिकारी है ।

3. आवेदक ने वाद में यह अभिकथित किया है कि उसे प्रतिवादी सं. 1, 2 और 3 द्वारा तारीख 26 सितंबर, 2008 को वाद संपत्ति से उसकी सम्मति के बिना और विधि की सम्यक् प्रक्रिया के बिना बेकब्जा किया गया है । आवेदक ने बेकब्जा किए जाने के तुरन्त पश्चात् वाद संपत्ति से बेकब्जा करने के बारे में शिकायत करते हुए पुलिस अधिकारियों के समक्ष लिखित परिवाद संस्थित किया था ।

4. विरोधी पक्षकार सं. 1, 2 और 3 ने मुख्य प्रतिवादियों के रूप में लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया है । उक्त प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथन में वादी के इस अभिकथन से प्रबल रूप से इनकार किया है कि उन्होंने तारीख 26 सितंबर, 2008 को वाद संपत्ति से वादी को बलपूर्वक बेकब्जा किया था । उक्त प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथन में स्पष्टतया इस कथन से भी इनकार किया है कि वादी उक्त संपत्ति का किराएदार है और वह एक किराएदार के रूप में संपत्ति पर काबिज था । वादी ने उक्त लिखित कथन का अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए विरोध किया कि रघुनाथ कोयरी नामक व्यक्ति प्रतिवादी-मकान-मालिकों का उक्त संपत्ति का मूल किराएदार था । उक्त रघुनाथ कोयरी की मृत्यु के पश्चात् उक्त किराएदारी उसकी विधवा दुर्गा देवी को न्यागत हो गई थी । प्रतिवादी सं. 1, 2 और 3 उक्त रघुनाथ कोयरी और गौरी देवी के नातेदार होने के नाते वाद संपत्ति पर काबिज हो गए थे ।

5. वादी और प्रतिवादी सं. 1 ने क्रमश: पी. डब्ल्यू. 1 और डी. डब्ल्यू.-1 के रूप में वाद में साक्ष्य दिया है । प्रतिवादी सं. 4 मोहम्मद इसराइल ने डी. डब्ल्यू.-2 के रूप में साक्ष्य दिया है ।

6. वाद में निम्नलिखित सात विवाद्यक विरचित किए गए हैं :–

(1) क्या वाद अपने वर्तमान प्ररूप और अनुरोध में ग्रहण किए जाने योग्य है ?

(2) क्या वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक उत्पन्न हुआ है ?

(3) क्या वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 द्वारा वर्जित है ?

(4) क्या वादी उक्त संपत्ति का किराएदार था ?

(5) क्या वादी को अवैध रूप से बेदखल किया गया था ?

(6) क्या वादी किसी अनुतोष के लिए हकदार है ?

(7) क्या वादी द्वारा कोई अन्य अनुतोष दिया मांगा गया है ?

7. विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद खारिज कर दिया कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 हकदारी के आधार पर न कि पूर्व-कब्जे के आधार कब्जे की वापिसी के बारे में उपबंध करती है । इस वाद में के वादी को केवल यह साबित करने की आवश्यकता है कि वह वाद संपत्ति के ऊपर काबिज था, जहां से उसे विधि की सम्यक् प्रक्रिया के बिना बेकब्जा किया गया था । वर्तमान वाद में वादी ने एकमात्र साक्षी के रूप में अभिसाक्ष्य दिया है । उसने पूर्व-कब्जे के अपने दावे के समर्थन में कतिपय किराया बिल पेश किए हैं जिन्हें प्रतिवादी-मकान-मालिक मोहम्मद इसराइल ने डी. डब्ल्यू.-2 के रूप में विवादित किया है । वादी वाद संपत्ति के ऊपर अपने कब्जे के समर्थन में कुछ भी पेश करने में विफल रहा है ।

8. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता श्री गांगुली ने बलपूर्वक यह दलील दी है कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने तात्विक अनियमितता बरती है और उसने दस्तावेजों अर्थात् किराया बिलों, पुलिस को की गई लिखित शिकायतों और वादियों द्वारा फाइल किए गए किराएदारी करार की सत्यापित प्रति तथा वाद में साबित किए गए क्रमश: प्रदर्श 1, 2, 3 और 4 को विचार में लिए बिना वाद खारिज करने में गलती की है । उन्होंने अपनी इस दलील के समर्थन में **लल्लू यशवंत सिंह** बनाम

राव जगदीश सिंह और अन्य[1] वाले मामले का अवलंब लिया है कि मकान-मालिक को पुनः कब्जा वापिस लेने का कोई अधिकार नहीं था और उसे किराएदार को बेकब्जा करने के लिए न्यायालय में समावेदन करना चाहिए था और बलपूर्वक कब्जा लेना अवैध है । विद्वान् अधिवक्ता श्री गांगुली ने अपनी उक्त दलील के समर्थन में **नायर सर्विस सोसायटी लिमिटेड** बनाम **के. सी. एलेक्ज़ेन्डर और अन्य**[2] वाले मामले का अवलंब लिया है ।

9. विरोधी पक्षकार सं. 1, 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता श्री स्वरूप बनर्जी ने यह दलील दी है कि वाद संपत्ति के ऊपर वादी का दावा पूर्णतया गलत है । वादी अभिकथित मूल किराएदारी करार को पेश करने में विफल रहा है और इसकी बजाय उसने इसकी फोटो प्रति पेश की है । यद्यपि उपर्युक्त किराएदारी करार को वाद में प्रदर्श सं. 4 के रूप में चिह्नांकित किया गया है तथापि, चूंकि साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 की अपेक्षा को पूरा नहीं किया गया है इसलिए उक्त दस्तावेज का कोई साक्ष्यिक मूल्य नहीं है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि उक्त संपत्ति का स्वीकृत किराएदार रघुनाथ कोयरी था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उक्त किराएदारी उसके विधिक वारिसों और प्रतिनिधियों को न्यागत हो गई और उनके मुवक्किल उक्त रघुनाथ कोयरी के चचेरे भाई और अन्य नातेदार हैं और इसलिए वाद संपत्ति पर काबिज हैं । वादी कभी भी वाद संपत्ति का किराएदार और/या उस पर काबिज नहीं रहा है । अत: उनके अनुसार विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश द्वारा वाद ठीक ही खारिज किया है जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

10. पक्षकारों के विद्वान् अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन किया गया । विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 ऐसे किसी व्यक्ति को, जिसे ऐसी किसी स्थावर संपत्ति से जिस पर वह काबिज था, विधि की प्रक्रिया के सिवाय बेदखल किया गया है, प्रतिस्थापित करने के लिए विशिष्ट प्रकार की शिकायत के लिए विशेष और द्रुतगामी उपचार के बारे में उपबंध करती है । अतः उपर्युक्त अधिनियम की धारा 6 का आश्रय लेने के लिए बेकब्जा करने की तारीख को स्थावर संपत्ति के ऊपर वादी का कब्जा होना पूर्ववर्ती शर्त है । ऐसी प्रकृति की कार्यवाहियों में ऐसा कब्जा होने के बारे में हकदारी के संबंध में

---

[1] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 620.

[2] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1165.

विवेचना करना सुसंगत नहीं है ।

11. वर्तमान वाद में के वादी ने वाद संपत्ति के ऊपर अपनी किराएदारी साबित करने के लिए कतिपय दस्तावेज फाइल किए हैं तथापि, उक्त दस्तावेज वाद संपत्ति के ऊपर वादी के कब्जे को साबित नहीं करते । उक्त दस्तावेज तारीख 25 जनवरी, 2006 के किराएदारी करार प्रदर्श 4 की सत्यापित फोटोप्रति है जिसमें यह उल्लिखित नहीं है कि उक्त करार के अनुसरण में वादी को वाद संपत्ति के ऊपर कब्जा दिया गया था और किराया रसीदें भी वाद संपत्ति के ऊपर वादी के कब्जे को साबित नहीं करतीं, विशेषतया तब जब मकान-मालिक ने स्वयं डी. डब्ल्यू.-2 के रूप में पेश होकर उक्त दस्तावेजों की सत्यता को विवादित किया है । पुलिस शिकायतें स्वयं लिखाए गए दस्तावेज हैं और किसी अन्य साक्ष्य के अभाव में ऐसे दस्तावेज सहायता नहीं करते और उक्त शिकायतों के आधार पर पुलिस वाद संपत्ति के ऊपर वादी के कब्जे के संबंध में निष्कर्ष नहीं निकाल सकती । वादी ज्यादा से ज्यादा उक्त दस्तावेजों का किसी वाद में अवलंब ले सकता है या वाद संपत्ति के ऊपर अपने किराएदारी के अधिकार को साबित करने के लिए कार्यवाही में अवलंब ले सकता है । वर्तमान वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 के अधीन होने के कारण ऐसे किसी प्रश्न की परीक्षा पूर्णतया अनावश्यक और असंगत है ।

12. वादी की तारीख 2 दिसंबर, 2014 को की गई प्रतिपरीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि उसने यह स्वीकार किया है कि पूर्व में रघुनाथ कोयरी वाद संपत्ति का किराएदार था । उसने यह भी स्वीकार किया है कि वह रघुनाथ कोयरी और उसकी पत्नी दुर्गा देवी कोयरी को जानता था और रघुनाथ कोयरी की मृत्यु हो चुकी है । उसने यह भी कथन किया है कि उसकी रघुनाथ कोयरी से कोई पारिवारिक नातेदारी नहीं है । उसने यह भी कथन किया है कि मकान-मालिक द्वारा रघुनाथ कोयरी के विरुद्ध बेदखली वाद फाइल किया गया है । उसने अपनी उक्त प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि रघुनाथ कोयरी के दो पुत्र हैं । अतः यह स्वीकृत स्थिति है कि वाद संपत्ति का किराएदार उक्त रघुनाथ कोयरी था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उक्त किराएदारी उक्त किराएदार के वारिसों को न्यागत हो गई और इसलिए मकान-मालिक ने उक्त किराएदार के विरुद्ध बेदखली वाद फाइल किया है ।

13. वादी की प्रतिपरीक्षा से यह स्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि वाद संपत्ति का कब्जा वादी को अभिकथित बेकब्जा करने की तारीख पर

वादी के पास नहीं था । जहां वादी वाद संपत्ति के ऊपर अपना कब्जा साबित करने में विफल रहा है वहां वह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 के उपबंधों का आश्रय लेकर उक्त कब्जा वापस लेने का हकदार नहीं है । विधि की इस प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं है जो माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **लल्लू यशवंत सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले के विनिश्चय में अधिकथित की गई है और जिसका श्री गांगुली द्वारा इस बारे में अवलंब लिया गया है कि भूमि का बलपूर्वक कब्जा लिया जाना अवैध है । तथापि, चूंकि वर्तमान मामले में वादी अपना पूर्वतर कब्जा साबित करने में विफल रहा है इसलिए उक्त विनिश्चय वर्तमान मामले में किसी भी प्रकार लागू नहीं होता है । उच्चतम न्यायालय द्वारा **नायर सर्विस सोसायटी लिमिटेड** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय भी, जिसका विद्वान् अधिवक्ता श्री गांगुली द्वारा अवलंब लिया गया है, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सुसंगत नहीं है क्योंकि माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उक्त विनिश्चय में प्रतिकूल कब्जे के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया था ।

14. ऊपर की गई विवेचना को दृष्टिगत करते हुए 2009 के हक वाद सं. 23 में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), न्यायालय सं. 1, सियालदह द्वारा तारीख 9 जुलाई, 2017 को पारित निर्णय और आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और इसलिए इसकी एतद्द्वारा पुष्टि की जाती है ।

15. 2017 का सी. ओ. सं. 3302 खारिज किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

16. इस आदेश की आवश्यक प्रमाणित प्रति यदि आवेदन किया जाता है, पक्षकारों को सभी अपेक्षित औपचारिकताएं पूरी करने पर प्रदत्त की जाए ।

17. निचले न्यायालय के अभिलेख तुरन्त निचले न्यायालय को भेजे जाएं ।

पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

मह.

भक्तवत्सल सिंह राजपूत

बनाम

श्रीमती वन्दना राजपूत

तारीख 9 मार्च, 2018

मुख्य न्यायमूर्ति थोट्टाथिल बी. राधाकृष्णन

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i) और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 1, नियम 10(2) – जारकर्म के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – अभिकथित जारकर्म-कर्ता को पक्षकार बनाने के लिए आवेदन – यद्यपि 1955 का अधिनियम जारकर्म-कर्ता को कार्यवाहियों का पक्षकार बनाने के लिए कोई उपबंध नहीं करता तथापि, जहां विवाह-विच्छेद की अर्जी में अन्तर्वलित प्रश्नों के न्यायनिर्णयन के लिए उसकी उपस्थिति आवश्यक हो वहां ऐसे जारकर्म-कर्ता को कार्यवाहियों का पक्षकार बनाया जा सकता है ।

वर्तमान आवेदन भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल किया गया है । मामला कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 के अधीन स्थापित कुटुंब न्यायालय से संबंधित है । आवेदक ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन इस आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन फाइल किया था कि प्रत्यर्थी/पत्नी उसके साथ क्रूरता बरतती है ; उसके तरुण जिसका पता इस रिट याचिका के पैरा 8.4 में दिया गया है, नामक व्यक्ति के साथ अवैध संबंध हैं । इस आवेदन के लंबन के दौरान प्रत्यर्थी-पत्नी ने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन एक आवेदन फाइल किया जिसमें उसने कार्यवाहियों के लंबन के दौरान उसे भरण-पोषण और खर्चों का संदाय करने का आदेश करने के लिए अनुरोध किया । कुटुंब न्यायालय द्वारा आदेश में उल्लिखित धनराशि के संदाय का निदेश करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया था । निचले न्यायालय ने यह भी निदेश दिया कि उपर्युक्त तरुण को कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाया जाए । वर्तमान मामले में इसी आदेश को आक्षेपित किया गया है । आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 14 और 21 में उच्च न्यायालय को नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है । छत्तीसगढ़ उच्च

न्यायालय ने हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को विनियमित करने के लिए नियम विरचित किए हैं । हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन नियमों के समूह में उच्च न्यायालय छत्तीसगढ़ नियम, 2007 का नियम 366 भी सम्मिलित है । इन नियमों के उप नियम (2) का खंड (vii)(ङ) (ii) अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध करता है कि यदि विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी जारकर्म के आधार पर फाइल की गई है तो ऐसे सभी व्यक्तियों के जिन्होंने ऐसे कार्य किए हैं, नाम और पतों का अर्जी में उल्लेख किया जाना चाहिए । अत: लागू कानूनी नियम स्वत: अभिकथित जारकर्म-कर्ता को हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में और छत्तीसगढ़ राज्य के किसी न्यायालय में की कार्यवाही में सह-प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाने के लिए उपबंध करते हैं । यदि विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के उपबंधों का परिशीलन किया जाए तो अधिनियम की धारा 11 विशेष रूप से यह उपबंध करती है कि जारकर्म-कर्ता को या जारकर्म में रहने वाली स्त्री को सह-प्रत्यर्थी बनाया जाएगा जब तक कि आवेदक न्यायालय को ऐसा न करने के बारे में कोई समुचित कारण न बताए और उन परिस्थितियों से अवगत न कराए जिनका इस धारा में उल्लेख किया गया है । तथापि, हिन्दू विवाह अधिनियम इस बात के लिए आबद्धकारी नहीं बनाता कि जारकर्म के आधार पर अभिकथित जारकर्म-कर्ता को पक्षकार बनाया जाए । निचला न्यायालय जो कुटुंब न्यायालय है, अन्य बातों के अतिरिक्त अधिनियम की धारा 10 से विनियमित होता है । इस धारा की 3 उपधाराएं हैं । उपधारा (2) किसी कुटुंब न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 9 के अधीन कार्यवाहियों को लागू होती है । धारा 10 की उपधारा (1) दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 9 के अधीन कार्यवाहियों के सिवाय कुटुंब न्यायालय के समक्ष के सभी वादों और कार्यवाहियों को लागू होती है । दंड प्रक्रिया संहिता और तत्समय प्रवृत्त अन्य किसी विधि के अधीन उपबंध कुटुंब न्यायालय के समक्ष वादों और कार्यवाहियों को लागू होते हैं और दंड प्रक्रिया संहिता के उक्त उपबंध के प्रयोजनों के लिए कुटुंब न्यायालय को एक सिविल न्यायालय समझा जाएगा और उसे ऐसे न्यायालय की समस्त शक्तियां प्राप्त होंगी । कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (3) यह उपबंध करती है कि धारा 10 की उपधारा (1) या (2) के उपबंध किसी कुटुंब न्यायालय को किसी एक पक्षकार द्वारा और दूसरे पक्षकार द्वारा इनकार किए जाने से संबंधित अभिकथित तथ्यों की सत्यता पर पहुंचने की

दृष्टि से स्वयं अपनी प्रक्रिया अधिकथित करने से निवारित नहीं करेंगे । ऐसी किसी कार्यवाही में जहां न्यायालय को यह विनिश्चित करना है कि क्या किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के साथ स्वेच्छा से मैथुन किया है वहां न्यायालय ऐसे किसी व्यक्ति को (अभिकथित जारकर्म-कर्ता को) कार्यवाहियों में एक प्रत्यर्थी के रूप में जोड़कर संविवाद को प्रभावी रूप से और पूर्ण रूप से न्यायनिर्णीत करने के लिए बेहतर स्थिति में होगा । अभिकथित जारकर्म-कर्ता हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i) के अधीन कार्यवाहियों का समुचित पक्षकार है । अभिकथित जारकर्म-कर्ता तब भी समुचित पक्षकार होगा जहां ऐसा व्यक्ति आवश्यक पक्षकार नहीं है । उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए निचले न्यायालय द्वारा 'तरुण' को विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन में अतिरिक्त प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाने के लिए निदेश करने में कोई अवैधता नहीं है क्योंकि अन्यथा ऐसा आवेदन विफल हो सकता है । अत: उक्त निदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार मौजूद नहीं है । (पैरा 6, 7, 9, 11 और 12)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2003]	ए. आई. आर. 2003 कर्नाटक 508 : **अरुण कुमार अग्रवाल** बनाम **राधा अरुण** ;	11
[1995]	1995 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1782 = (1995) 3 एस. सी. सी. 147 : **अनिल कुमार सिंह** बनाम **शिव नाथ मिश्रा** ;	10
[1958]	ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 886 : **रज़िया बेगम** बनाम **साहिबज़ादी अनवर बेगम** ।	11

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2013 की रिट याचिका (सिविल) सं. 553.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन सिविल रिट आवेदन ।

आवेदक की ओर से –

विपक्षी की ओर से –

मुख्य न्यायमूर्ति थोट्टाथिल बी. राधाकृष्णन – वर्तमान आवेदन भारत

के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल किया गया है । मामला कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 के अधीन स्थापित कुटुंब न्यायालय से संबंधित है ।

2. आवेदक ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे आगे संक्षेप में '1955 का अधिनियम' कहा गया है) के अधीन इस आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन फाइल किया था कि प्रत्यर्थी/पत्नी उसके साथ क्रूरता बरतती है ; उसके तरुण जिसका पता इस रिट याचिका के पैरा 8.4 में दिया गया है, नामक व्यक्ति के साथ अवैध संबंध हैं । इस आवेदन के लंबन के दौरान प्रत्यर्थी-पत्नी ने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन एक आवेदन फाइल किया जिसमें उसने कार्यवाहियों के लंबन के दौरान उसे भरण-पोषण और खर्चों का संदाय करने का आदेश करने के लिए अनुरोध किया । कुटुंब न्यायालय द्वारा आदेश में उल्लिखित धनराशि के संदाय का निदेश करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया था । निचले न्यायालय ने यह भी निदेश दिया कि उपर्युक्त तरुण को कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाया जाए । वर्तमान मामले में इसी आदेश को आक्षेपित किया गया है ।

3. मामले के लंबन के दौरान भरण-पोषण और मुकदमेदारी के खर्चों के संबंध में संदाय के लिए किए गए आदेश में खाना और यात्रा खर्चे सम्मिलित हैं और यह आदेश निचले न्यायालय द्वारा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और विवेक का सम्यक् और ऋजु प्रयोग करते हुए पारित किया गया है । इस प्रकार अधिनिर्णीत धनराशि अत्यधिक नहीं कही जा सकती ; या यह नहीं कहा जा सकता कि यह विधि के अधीन अनुज्ञेय नहीं है । अत: भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन शक्ति के प्रयोग में इस सीमा तक आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार नहीं बनता है ।

4. विचार के लिए यह प्रश्न शेष रह जाता है कि क्या निचले न्यायालय ने रिट याची द्वारा यह अभिकथन करते हुए कि उसकी पत्नी उक्त व्यक्ति के साथ जारकर्म में रह रही है, फाइल किए गए विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन में सह-प्रत्यर्थी के रूप में तरुण नामक व्यक्ति को पक्षकार बनाने के लिए निदेश करने में अधिकारिता रहित या अवैध रूप से कार्य किया है ।

5. निचले न्यायालय के समक्ष आवेदक ने यह अभिवाक् किया है कि

प्रत्यर्थी, तरुण नामक व्यक्ति के साथ जारकर्म में रह रही है । रिट याची ने अपने इस अभिवाक् को इस रिट याचिका में भी दोहराया है जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है ।

6. हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 14 और 21 में उच्च न्यायालय को नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है । छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को विनियमित करने के लिए नियम विरचित किए हैं । हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन नियमों के समूह में उच्च न्यायालय छत्तीसगढ़ नियम, 2007 का नियम 366 भी सम्मिलित है । इन नियमों के उप नियम (2) का खंड (vii)(ङ)(ii) अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध करता है कि यदि विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी जारकर्म के आधार पर फाइल की गई है तो ऐसे सभी व्यक्तियों के जिन्होंने ऐसे कार्य किए हैं, नाम और पतों का अर्जी में उल्लेख किया जाना चाहिए । अत: लागू कानूनी नियम स्वत: अभिकथित जारकर्म-कर्ता को हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में और छत्तीसगढ़ राज्य के किसी न्यायालय में की कार्यवाही में सह-प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाने के लिए उपबंध करते हैं ।

7. यदि विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के उपबंधों का परिशीलन किया जाए तो अधिनियम की धारा 11 विशेष रूप से यह उपबंध करती है कि जारकर्म-कर्ता को या जारकर्म में रहने वाली स्त्री को सह-प्रत्यर्थी बनाया जाएगा जब तक कि आवेदक न्यायालय को ऐसा न करने के बारे में कोई समुचित कारण न बताए और उन परिस्थितियों से अवगत न कराए जिनका इस धारा में उल्लेख किया गया है । तथापि, हिन्दू विवाह अधिनियम इस बात के लिए आबद्धकारी नहीं बनाता कि जारकर्म के आधार पर अभिकथित जारकर्म-कर्ता को पक्षकार बनाया जाए ।

8. वहां क्या स्थिति होगी जहां नियम अभिकथित जारकर्म-कर्ता को सह-प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाने की अपेक्षा नहीं करते ?

9. निचला न्यायालय जो कुटुंब न्यायालय है, अन्य बातों के अतिरिक्त अधिनियम की धारा 10 से विनियमित होता है । इस धारा की 3 उप-धाराएं हैं । उपधारा (2) किसी कुटुंब न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 9 के अधीन कार्यवाहियों को लागू होती है । धारा 10 की उपधारा (1) दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 9 के अधीन कार्यवाहियों के सिवाय

कुटुंब न्यायालय के समक्ष के सभी वादों और कार्यवाहियों को लागू होती है । दंड प्रक्रिया संहिता और तत्समय प्रवृत्त अन्य किसी विधि के अधीन उपबंध कुटुंब न्यायालय के समक्ष वादों और कार्यवाहियों को लागू होते हैं और दंड प्रक्रिया संहिता के उक्त उपबंध के प्रयोजनों के लिए कुटुंब न्यायालय को एक सिविल न्यायालय समझा जाएगा और उसे ऐसे न्यायालय की समस्त शक्तियां प्राप्त होंगी । कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा की उपधारा (3) यह उपबंध करती है कि धारा 10 की उपधारा (1) या (2) के उपबंध किसी कुटुंब न्यायालय को किसी एक पक्षकार द्वारा और दूसरे पक्षकार द्वारा इनकार किए जाने से संबंधित अभिकथित तथ्यों की सत्यता पर पहुंचने की दृष्टि से स्वयं अपनी प्रक्रिया अधिकथित करने से निवारित नहीं करेंगे ।

10. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 का नियम 10(2) इस प्रकार है :–

> "**न्यायालय पक्षकारों का नाम काट सकेगा या जोड़ सकेगा** – न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम में या तो दोनों पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर या उसके बिना और ऐसे निबन्धनों पर जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हों, यह आदेश दे सकेगा कि वादी के रूप में या प्रतिवादी के रूप में अनुचित तौर पर संयोजित किसी भी पक्षकार का नाम काट दिया जाए और किसी व्यक्ति का नाम जिसे वादी या प्रतिवादी के रूप में ऐसे संयोजित किया जाना चाहिए था या न्यायालय के सामने जिसकी उपस्थिति वाद में अन्तर्वलित सभी प्रश्नों का प्रभावी तौर पर और पूरी तरह न्यायनिर्णयन और निपटारा करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने की दृष्टि से आवश्यक हो, जोड़ दिया जाए ।"

उच्चतम न्यायालय द्वारा **अनिल कुमार सिंह** बनाम **शिव नाथ मिश्रा**[1] वाले मामले में यह अधिकथित किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 नियम 10(2) का उद्देश्य ऐसे सभी व्यक्तियों को अभिलेख पर लाना है जो विषय-वस्तु से संबंधित विवाद के पक्षकार हैं, जिससे कि विवाद उनकी उपस्थिति में अवधारित किया जा सके और इसके साथ-साथ ऐसा विवाद किसी प्रवर्धन और असुविधा के बिना अवधारित किया जा सके

---

[1] 1995 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1782 = (1995) 3 एस. सी. सी. 147.

और कार्यवाहियों की विविधता से बचा जा सके । यह अधिकथित किया गया था कि किसी व्यक्ति को वाद में पक्षकार-प्रतिवादी के रूप में जोड़ा जा सकता है भले ही ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध किसी अनुतोष का दावा न किया गया हो, बशर्ते कि ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति वाद में अन्तर्वलित प्रश्न को पूर्ण करने और अंतिम विनिश्चय देने के लिए आवश्यक हो ।

11. ऐसी किसी कार्यवाही में जहां न्यायालय को यह विनिश्चित करना है कि क्या किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के साथ स्वेच्छा से मैथुन किया है वहां न्यायालय ऐसे किसी व्यक्ति को (अभिकथित जारकर्म-कर्ता को) कार्यवाहियों में एक प्रत्यर्थी के रूप में जोड़कर संविवाद को प्रभावी रूप से और पूर्ण रूप से न्यायनिर्णीत करने के लिए बेहतर स्थिति में होगा । अभिकथित जारकर्म-कर्ता हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i) के अधीन कार्यवाहियों का समुचित पक्षकार है । अभिकथित जारकर्म-कर्ता तब भी समुचित पक्षकार होगा जहां ऐसा व्यक्ति आवश्यक पक्षकार नहीं है । **अरुण कुमार अग्रवाल** बनाम **राधा अरुण**[1] वाला मामला देखिए । मैं उक्त न्यायिक निर्णय में, जो दिया गया था, अभिव्यक्त मत से ससम्मान सहमत हूं और जिसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा **रज़िया बेगम** बनाम **साहिबज़ादी अनवर बेगम**[2] वाले मामले के विनिश्चय का निर्देश किया गया है । संदर्भ के लिए यहां **अरुण कुमार अग्रवाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत का उल्लेख करना उचित होगा :–

> "तथापि, जहां नियम अभिकथित जारकर्म-कर्ता को सह-प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाने की अपेक्षा नहीं करते तथापि, उसका नाम अर्जी में दिया गया है वहां किसी नियम के अभाव में हम सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 3, 5 और 10(2) पर विचार करते हैं । नियम 3 यह उपबंध करता है कि वे सभी व्यक्ति प्रतिवादियों के रूप में एक वाद में संयोजित किए जा सकेंगे जहां एक ही कार्य या संव्यवहार या कार्यों या संव्यवहारों की आवली के बारे में या उससे पैदा होने वाले अनुतोष पाने का कोई अधिकार उनके विरुद्ध संयुक्ततः या पृथक्तः या अनुकल्पतः वर्तमान होना अभिकथित है, और यदि ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध पृथक्-पृथक् वाद लाए जाते तो, विधि

---

[1] ए. आई. आर. 2003 कर्नाटक 508.

[2] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 886.

या तथ्य का सामान्य प्रश्न पैदा होता । नियम 5 यह स्पष्ट करता है कि यह आवश्यक नहीं होगा कि हर प्रतिवादी अपने विरुद्ध किसी वाद में दावाकृत संपूर्ण अनुतोष के बारे में हितबद्ध हो । नियम 10(2) अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध करता है कि न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम में यह आदेश कर सकता है कि किसी पक्षकार का नाम जिसे प्रतिवादी के रूप में अनुचित रूप से जोड़ा गया है, काट दिया जाए ; ऐसे किसी व्यक्ति का नाम जिसे वादी या प्रतिवादी के रूप में संयोजित किया जाना चाहिए था या न्यायालय के सामने जिसकी उपस्थिति वाद में अन्तर्वलित सभी प्रश्नों का प्रभावी तौर पर और पूरी तरह न्यायनिर्णयन और निपटारा करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने की दृष्टि से आवश्यक हो, जोड़ा जाए ।"

12. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए निचले न्यायालय द्वारा 'तरुण' को विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन में अतिरिक्त प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाने के लिए निदेश करने में कोई अवैधता नहीं है क्योंकि अन्यथा ऐसा आवेदन विफल हो सकता है । अतः उक्त निदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार मौजूद नहीं है ।

13. परिणामतः भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन यह आवेदन विफल होता है । तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है ।

आवेदन खारिज किया गया ।

मह.

ननकू रामबरन

बनाम

रामचरण मनछर और अन्य

तारीख 17 सितंबर, 2018

न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 117 – कृषि अनुज्ञप्ति – संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 117 का प्रवर्तन – अधिनियम की धारा 117 कृषि से संबंधित अनुज्ञप्ति को लागू होती है ।

भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 (1882 का 5) – धारा 52 – मौखिक अनुज्ञप्ति – मंजूरी – अनुज्ञप्ति मौखिक हो सकती है – अनुज्ञप्ति को सदैव लिखित रूप में होना आवश्यक नहीं है ।

प्रत्यर्थी/वादियों ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए हकदारी और कब्जे की घोषणा के लिए एक सिविल वाद फाइल किया था कि वादपत्र की अनुसूची-1 में उल्लिखित संपत्ति वादी सं. 1 और 2 के पिता और वादी सं. 3 के पति स्वर्गीय मनछर पुत्र आयतवा ओरांव की स्व-अर्जित संपत्ति है जिसमें उन्हें सरगुजा बंदोबस्त द्वारा रैयती अधिकार मंजूर किए गए हैं और इसके संबंध में प्रतिवादी सं. 1 के पिता को उसके कुटुंब के भरणपोषण के लिए कृषि संबंधी कार्य के लिए अनुज्ञप्ति दी गई थी । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 के पिता की मृत्यु हो गई और तब प्रत्यर्थी सं. 1 ने अनुज्ञप्ति को जारी रखने का अनुरोध किया जिसके लिए अनुज्ञात कर दिया गया था और उक्त भूमि को जब भी उसे वापस मांगा जाए, वापस करने के लिए कहा गया था, तथापि, इसके पश्चात् प्रतिवादी सं. 1 ने राजस्व अभिलेखों में अपना नाम दर्ज करा लिया, जिसके कारण वर्तमान वाद फाइल किया गया और जिसमें प्रतिवादियों के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई । वादियों ने अपने कथन के समर्थन में तीन साक्षियों अर्थात् भंगली (पी. डब्ल्यू. 1), फुलबसिया (पी. डब्ल्यू. 2) और रामचरण (पी. डब्ल्यू. 3) की परीक्षा कराई । प्रतिवादी सं. 1 ने वादपत्र में किए गए कथनों से इनकार किया और अपने हक में प्रतिकूल कब्जे का अभिवचन किया । यद्यपि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर के मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि

वाद अंतर्गत संपत्ति स्वर्गीय मनछर पुत्र आयतवा ओरांव की स्व-अर्जित संपत्ति है और यह संपत्ति वादियों को उत्तराधिकार में मिली है तथापि, यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी प्रतिवादी सं. 1 के पिता के हक में अनुज्ञप्ति की मंजूरी को साबित करने में विफल रहे हैं और इसलिए वाद खारिज कर दिया । वादियों द्वारा अपील न्यायालय में अपील फाइल किए जाने पर प्रथम अपील न्यायालय ने वाद भूमि पर वादियों के हक की पुष्टि की तथापि, यह अभिनिर्धारित किया कि अनुज्ञप्ति मौखिक हो सकती है और संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 117 लागू होती है और यह भी अभिनिर्धारित किया कि कृषि संबंधी अनुज्ञप्ति को धारा 117 के उपबंध लागू नहीं होते हैं । प्रतिवादी सं. 1 द्वारा प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय और डिक्री को आक्षेपित करते हुए द्वितीय अपील फाइल की गई जिसमें विधि का सारभूत प्रश्न विरचित किया गया है, जिसका निर्णय के आरंभिक पैरा में उल्लेख किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 की धारा 52 के अधीन अनुज्ञप्ति मौखिक हो सकती है और अनुज्ञप्ति मंजूर करने के लिए किसी लिखित दस्तावेज को तैयार करने की आवश्यकता नहीं है । विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादियों के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी । वादियों द्वारा तीन साक्षियों अर्थात् भंगली (पी. डब्ल्यू. 1), फुलबसिया (पी. डब्ल्यू. 2) और रामचरण (पी. डब्ल्यू. 3) की परीक्षा कराई गई है जिन्होंने प्रत्यक्षतया और स्पष्टतया यह कथन किया है कि वादी सं. 1 और 2 के पिता द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के पिता के हक में अनुज्ञप्ति मंजूर की गई थी । उन्होंने वादीगण और उनके साक्षियों द्वारा अभिकथित अनुज्ञप्ति के अभिवाक् का खंडन नहीं किया है । अतः इस कारण से प्रथम अपील न्यायालय का निर्णय अभिलेख पर उपलब्ध वादियों के साक्ष्य पर आधारित है । अतः प्रथम अपील न्यायालय वादियों के हक में डिक्री मंजूर करने में न्यायोचित है । यद्यपि प्रथम अपील न्यायालय ने गलत रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि कृषि संबंधी अनुज्ञप्ति के मामले में टी. पी. अधिनियम की धारा 117 के उपबंध लागू नहीं होते हैं जैसा कि वर्तमान मामले में है तथापि, यह तथ्य रह जाता है कि विचारण न्यायालय का निर्णय विधि द्वारा समर्थित नहीं है । उपर्युक्त विधिक विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय को द्वितीय अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और इसलिए विधि के सारभूत प्रश्न का प्रतिवादियों के विरुद्ध और वादियों के हक में उत्तर दिया जाता है । (पैरा 9 और 10)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2000 की द्वितीय अपील सं. 37.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री ए. के. प्रसाद

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एच. बी. अग्रवाल, श्रीमती इतू रानी मुखर्जी और श्री अरूण साव

न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल – प्रतिवादी की इस द्वितीय अपील में अन्तर्वलित, विरचित और उत्तर दिए जाने के लिए विधि का सारभूत प्रश्न इस प्रकार है :–

> "क्या संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 117 के प्रवर्तन से संबंधित प्रथम अपील न्यायालय का निष्कर्ष अनुचित है ?"

सुविधा के लिए पक्षकारों को आगे विचारण न्यायालय में उपदर्शित उनकी स्थिति के अनुसार निर्दिष्ट किया गया है ।

2. प्रत्यर्थी/वादियों ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए हकदारी और कब्जे की घोषणा के लिए एक सिविल वाद फाइल किया था कि वादपत्र की अनुसूची-1 में उल्लिखित संपत्ति वादी सं. 1 और 2 के पिता और वादी सं. 3 के पति स्वर्गीय मनछर पुत्र आयतवा ओरांव की स्व-अर्जित संपत्ति है जिसमें उन्हें सरगुजा बंदोबस्त द्वारा रैयती अधिकार मंजूर किए गए हैं और इसके संबंध में प्रतिवादी सं. 1 के पिता को उसके कुटुंब के भरणपोषण के लिए कृषि संबंधी कार्य के लिए अनुज्ञप्ति दी गई थी । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 के पिता की मृत्यु हो गई और तब प्रत्यर्थी सं. 1 ने अनुज्ञप्ति को जारी रखने का अनुरोध किया जिसके लिए अनुज्ञात कर दिया गया था और उक्त भूमि को जब भी उसे वापस मांगा जाए, वापस करने के लिए कहा गया था, तथापि, इसके पश्चात् प्रतिवादी सं. 1 ने राजस्व अभिलेखों में अपना नाम दर्ज करा लिया, जिसके कारण वर्तमान वाद फाइल किया गया और जिसमें प्रतिवादियों के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई । वादियों ने अपने कथन के समर्थन में तीन साक्षियों अर्थात् भंगली (पी. डब्ल्यू. 1), फुलबसिया (पी. डब्ल्यू. 2) और रामचरण (पी. डब्ल्यू. 3) की परीक्षा कराई । प्रतिवादी सं. 1 ने वादपत्र में किए गए कथनों से इनकार किया और अपने हक में प्रतिकूल कब्जे का अभिवचन किया ।

3. यद्यपि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर के मौखिक और

दस्तावेजी साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि वाद अंतर्गत संपत्ति स्वर्गीय मनछर पुत्र आयतवा ओरांव की स्व-अर्जित संपत्ति है और यह संपत्ति वादियों को उत्तराधिकार में मिली है तथापि, यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी प्रतिवादी सं. 1 के पिता के हक में अनुज्ञप्ति की मंजूरी को साबित करने में विफल रहे हैं और इसलिए वाद खारिज कर दिया । वादियों द्वारा अपील न्यायालय में अपील फाइल किए जाने पर प्रथम अपील न्यायालय ने वाद भूमि पर वादियों के हक की पुष्टि की तथापि, यह अभिनिर्धारित किया कि अनुज्ञप्ति मौखिक हो सकती है और संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (जिसे आगे संक्षेप में 'टी. पी.' अधिनियम कहा गया है) की धारा 117 लागू होती है और यह भी अभिनिर्धारित किया कि कृषि संबंधी अनुज्ञप्ति को धारा 117 के उपबंध लागू नहीं होते हैं । प्रतिवादी सं. 1 द्वारा प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय और डिक्री को आक्षेपित करते हुए द्वितीय अपील फाइल की गई जिसमें विधि का सारभूत प्रश्न विरचित किया गया है, जिसका निर्णय के आरंभिक पैरा में उल्लेख किया गया है ।

4. हमारे समक्ष के अपीलार्थी/प्रतिवादी सं. 1 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री ए. के. प्रसाद ने यह दलील दी है कि प्रथम अपील न्यायालय संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 117 को लागू करने में पूर्णतया अन्यायोचित था क्योंकि वादियों का यह पक्षकथन है कि वादी सं. 1 और 2 के पिता द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में अनुज्ञप्ति मंजूर की गई थी इसलिए टी. पी. अधिनियम के प्रवर्तन का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है और इसलिए प्रथम अपील न्यायालय का निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है ।

5. हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 1/वादी सं. 1 की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एच. बी. अग्रवाल ने यह दलील दी है कि यद्यपि दोनों निचले न्यायालयों ने वाद भूमि के ऊपर वादियों की हकदारी मानी है तथापि, प्रथम अपील न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि यह भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 की धारा 52 के अधीन उपबंधित मौखिक अनुज्ञा का मामला है, इसलिए द्वितीय अपील खारिज किए जाने योग्य है ।

6. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और उनके द्वारा दी गई परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया तथा पूर्ण सतर्कता के साथ अभिलेखों का परिशीलन किया ।

7. दोनों निचले न्यायालयों ने समवर्ती रूप से और प्रभावी रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि वाद संपत्ति वादी सं. 1 और 2 के पिता स्वर्गीय मनछर पुत्र आयतवा ओरांव की थी और उसके पास वाद संपत्ति धारित करने का हक था तथापि, प्रतिवादियों द्वारा अपील फाइल करके अथवा प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष प्रति-आक्षेप फाइल करके निष्कर्षों को आक्षेपित नहीं किया गया और इसलिए वे अंतिम बन गए । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी प्रतिवादियों के हक में अनुज्ञप्ति के अभिवाक् को साबित करने में विफल रहे हैं और इसके अतिरिक्त प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए उक्त निष्कर्ष को उलट दिया कि अनुज्ञप्ति मौखिक हो सकती है ।

8. भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 की धारा 52 इस प्रकार उपबंधित है :–

> "**अनुज्ञप्ति की परिभाषा** – जहां एक व्यक्ति किसी अन्य को, या निश्चित संख्या में अन्य व्यक्तियों को, ऐसे अधिकार का अनुदान करता है जो अनुदानकर्ता की स्थावर सम्पत्ति में या उस पर कोई ऐसी बात करने या करते रहने के लिए है जो ऐसे अधिकार के अभाव में विधिविरुद्ध होगी और ऐसा अधिकार सुखाचार या सम्पत्ति में हित नहीं है, वहां ऐसा अधिकार अनुज्ञप्ति कहलाता है ।"

9. भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 की धारा 52 के अधीन अनुज्ञप्ति मौखिक हो सकती है और अनुज्ञप्ति मंजूर करने के लिए किसी लिखित दस्तावेज को तैयार करने की आवश्यकता नहीं है । विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादियों के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी । वादियों द्वारा तीन साक्षियों अर्थात् भंगली (पी. डब्ल्यू. 1), फुलबसिया (पी. डब्ल्यू. 2) और रामचरण (पी. डब्ल्यू. 3) की परीक्षा कराई गई है जिन्होंने प्रत्यक्षतया और स्पष्टतया यह कथन किया है कि वादी सं. 1 और 2 के पिता द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के पिता के हक में अनुज्ञप्ति मंजूर की गई थी । उन्होंने वादीगण और उनके साक्षियों द्वारा अभिकथित अनुज्ञप्ति के अभिवाक् का खंडन नहीं किया है । अतः इस कारण से प्रथम अपील न्यायालय का निर्णय अभिलेख पर उपलब्ध वादियों के साक्ष्य पर आधारित है । अतः प्रथम अपील न्यायालय वादियों के हक में डिक्री मंजूर करने में न्यायोचित है । यद्यपि प्रथम अपील न्यायालय ने गलत रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि कृषि संबंधी अनुज्ञप्ति के मामले में टी. पी. अधिनियम की धारा 117 के उपबंध लागू नहीं होते हैं जैसा कि वर्तमान

मामले में है तथापि, यह तथ्य रह जाता है कि विचारण न्यायालय का निर्णय विधि द्वारा समर्थित नहीं है ।

10. उपर्युक्त विधिक विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए मुझे द्वितीय अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और इसलिए विधि के सारभूत प्रश्न का प्रतिवादियों के विरुद्ध और वादियों के हक में उत्तर दिया जाता है ।

11. उपर्युक्त विवेचना के परिणामस्वरूप द्वितीय अपील खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

12. तद्नुसार डिक्री बनाई जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 28 **जम्मू-कश्मीर**

मोहम्मद अकबर लोन

बनाम

महानिदेशक, प्रसार भारती

तारीख 28 सितम्बर, 2018

न्यायमूर्ति एम. के. हन्जुआ

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) – धारा 5 – अपील फाइल किए जाने में कारित विलम्ब का क्षमा किया जाना – अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ परिसीमा का पालन पूरी कठोरता के साथ किया जाना चाहिए और न्यायालय को साम्यापूर्ण आधारों पर परिसीमा की अवधि को विस्तारित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है – यदि कारित विलम्ब के कारण अपर्याप्त है और न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अपील फाइल किए जाने में सम्यक् तत्परता का पालन नहीं किया गया तो परिसीमा को विस्तारित किए जाने के द्वारा विलम्ब को क्षमा नहीं किया जा सकता चाहे अपील फाइल किए जाने वाला पक्ष सरकार ही क्यों न हो ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 114 – पुनर्विलोकन की परिधि – पुनर्विलोकन की अवधि अत्यन्त सीमित होती है

और पुनर्विलोकन के प्रयोजनार्थ मामले में पुनः बहस के लिए फोरम उपलब्ध नहीं कराया जा सकता – पुनर्विलोकन को न्यायालय के विचार/राय को परिवर्तित करने के लिए औजार के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता ।

मामले के संक्षेप में तथ्य ये हैं कि आवेदकों-पुनर्विलोकन याचियों ने इस आवेदन के माध्यम से 2012 की रिट याचिका संख्या 892 में इस न्यायालय द्वारा पारित तारीख 28 मई, 2013 का निर्णय वापस लिए जाने के लिए पुनर्विलोकन याचिका फाइल किए जाने में 1230 दिनों का विलम्ब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय द्वारा मध्यक्षेप किए जाने की ईप्सा अन्य बातों के साथ-साथ इन आधारों पर की कि यद्यपि याचियों के दावे पर उक्त निर्णय के मतावलम्बन में विचार किया गया था, फिर भी माननीय न्यायालय द्वारा निर्णय में की गई मताभिव्यक्ति की तारीख 2 अप्रैल, 2012 के द्वारा 130 आकस्मिक श्रमिकों की नियुक्ति की गई थी और इसलिए याचियों की नियुक्ति पर भी विचार किया जाएगा, गुणागुण से रहित है । तारीख 2 अप्रैल, 2012 का ऐसा कोई भी आदेश अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर 130 श्रमिकों को नियुक्त किया गया, जैसी कि मताभिव्यक्ति माननीय उच्च न्यायालय द्वारा की गई है और इस प्रकार याचियों के साथ समान व्यवहार किए जाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता । आवेदकों ने आगे अभिकथित किया है कि अभिलेख पर तारीख 2 अप्रैल, 2012 की एक संसूचना उपलब्ध है किन्तु यह संसूचना वास्तव में सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत प्रस्तुत किए गए आवेदन का उत्तर है जिसके द्वारा आकस्मिक श्रमिकों को नियुक्त किए जाने के बारे में सूचना की ईप्सा की गई है । आगे यह अभिकथित किया गया है कि आवेदकों/पुनर्विलोकन याचियों को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी कि 130 व्यक्तियों को वास्तव में तारीख 2 अप्रैल, 2012 के आदेश के निबंधनों के अनुसार नियुक्त किया गया था । वे तारीख 28 मई, 2013 के निर्णय के अनुपालन को प्रारूपित करने में व्यस्त थे और वास्तव में याचियों के दावे पर विचार किया गया और उसको अस्वीकृत किया गया था । इसी बीच में रिट याचियों ने एक अवमानना याचिका फाइल की जिसमें माननीय न्यायालय ने एक अधिकारी के विरुद्ध नियम विरचित किए और 2016 के सितम्बर माह में उत्तर फाइल किए जाने की इसी प्रक्रिया के दौरान इस तथ्य की जानकारी हुई कि तारीख 2 अप्रैल, 2012 का आदेश वास्तव में 130 व्यक्तियों को नियुक्ति प्रदान करने वाला आदेश नहीं था, बल्कि यह

मात्र सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत फाइल किए गए आवेदन का उत्तर था । आगे यह अभिकथित किया गया है कि इस आदेश को जानकारी प्राप्त होने के पश्चात् आवेदक/पुनर्विलोकन याची संख्या 1 - प्रसार भारती, महानिदेशक, नई दिल्ली को अग्रेसित किया गया था जिसने वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजीव शर्मा से राय मांगी और तत्पश्चात् पुनर्विलोकन याचिका फाइल किए जाने का निर्णय लिया गया । पुनर्विलोकन याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विवादों के गुणागुण पर विचार करते हुए यह कहा जाना आवश्यक है कि स्थिरीकृत विधि यह है कि यह मात्र एक त्रुटि है जो अभिलेख को दृष्टिगत करते हुए ही स्पष्ट हो जाती है, जिस पर इस पुनर्विलोकन याचिका में विचार किया जा सकता है और उसका निपटारा किया जा सकता है । किसी आदेश के पुनर्विलोकन की परिधि अत्यंत सीमित होती है और इस आदेश पर उस मामले में, जिसको पहले ही निर्णीत किया जा चुका है, पर पुनः बहस के लिए कोई फोरम उपबंधित नहीं किया जा सकता । पुनर्विलोकन को न्यायालय के विचार/राय को परिवर्तित करने के लिए एक औजार के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता । माननीय न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने बहुमत द्वारा व्यक्त किए गए मत के साथ सहमति व्यक्त करते हुए अपना मत निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया – "पुनर्विलोकन का अभिवाक्, जब तक कि प्रथम न्यायिक मत को स्पष्टतया तोड़ा-मरोड़ा नहीं गया है, वह उसी प्रकार से है जैसे कि किसी बालक द्वारा चन्द्रमा की इच्छा करना, किसी व्यक्ति द्वारा कमियों की खोज करना और उसके आधार पर परिणाम को पलटने की ईप्सा करना ..... । किसी काउंसेल की राय में पुनर्विलोकन दुबारा अधिनिर्णय को ठीक नहीं कर सकता । अतः जो विधि अधिकथित की गई है उसी का अवलंब लिया जाता है ।" आवेदकों/पुनर्विलोकन याचियों ने हमारे समक्ष निवेदन किया कि ऐसा कोई निर्देश नहीं दिया गया है जिसके द्वारा यह चित्रित किया जाए कि 130 आकस्मिक श्रमिकों को किसी आदेश द्वारा नियुक्त किया गया था और न्यायालय ने ऐसा अभिकथित करके त्रुटि कारित की । अभिलेखों से इस तथ्य के परिसाक्ष्य की पुष्टि होती है कि यह प्रत्यर्थियों/इसमें के आवेदकों द्वारा सूचना का अधिकार के अन्तर्गत उपलब्ध कराई गई सूचना के आधार पर हुआ है, जिसके द्वारा इस बात को प्रकटतः स्पष्ट किया गया है कि 130 व्यक्तियों को आकस्मिक श्रमिकों के रूप में नियुक्त किया गया । क्या उपलब्ध कराई गई सूचना किसी आदेश की

प्रकृति में या किसी सूचना की प्रकृति में, यह नितान्त रूप से अतात्विक है, जैसा कि सूचना अभिलेख पर उपलब्ध है । आवेदकों/पुनर्विलोकन याचियों ने विनिर्दिष्ट रूप से आवेदन प्रस्तुत करने वालों को सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन सूचित किया है कि 130 व्यक्तियों को आकस्मिक श्रमिकों के रूप में नियुक्त किया गया है । यह दलील रिट याचिका के विनिर्धारण के समय न्यायालय के समक्ष भी दी गई थी और अब इस दलील को न्यायालय के विचार/मत को परिवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ औजार के रूप में पुनः प्रयोग किए जाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । (पैरा 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 12 एस. सी. सी. 649 : **ईशा भट्टाचार्जी** बनाम **रघुनाथपुर नाफर एकेडमी** ;	9
[2013]	(2013) 7 एस. सी. सी. 615 : **खेला बनर्जी और एक अन्य** बनाम **सिटी मोन्टेसरी स्कूल और अन्य** ;	13
[2013]	(2013) 8 एस. सी. सी. 320 : **कमलेश वर्मा** बनाम **मायावती और अन्य** ;	13
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1237 : **भारत संघ** बनाम **नृपेन शर्मा** ;	8
[2010]	2010 (4) जे. के. जे. 638 (एच. सी.) : **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य** बनाम **गाजी मोहिउद्दीन दार और अन्य** ;	7
[1999]	(1999) 9 एस. सी. सी. 596 : **अजित कुमार राठ** बनाम **उड़ीसा राज्य** ;	13
[1980]	(1980) 2 एस. सी. सी. 167 = ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 674 **नोर्दन इंडिया केट्रर्स** बनाम **उप-राज्यपाल, दिल्ली** ।	13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील संख्या 220.

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 114 के अधीन याचिका ।

आवेदकों की ओर से श्री क्यू. आर. शमांज

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री जफर ए. शाह, वरिष्ठ अधिवक्ता

निर्णय

न्यायमूर्ति एम. के. हन्जुआ – आवेदकों-पुनर्विलोकन याचियों ने इस आवेदन के माध्यम से 2012 की रिट याचिका संख्या 892 में इस न्यायालय द्वारा पारित तारीख 28 मई, 2013 का निर्णय रद्द किए जाने के लिए पुनर्विलोकन याचिका फाइल किए जाने में 1230 दिनों का विलम्ब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय द्वारा मध्यक्षेप किए जाने की ईप्सा अन्य बातों के साथ-साथ इन आधारों पर की है कि यद्यपि याचियों के दावे पर उक्त निर्णय के मतावलम्बन में विचार किया गया था, फिर भी माननीय न्यायालय द्वारा निर्णय में की गई मताभिव्यक्ति की तारीख 2 अप्रैल, 2012 के निर्णय द्वारा 130 आकस्मिक श्रमिकों की नियुक्ति की गई थी और इसलिए याचियों की नियुक्ति पर भी विचार किया जाएगा, में कोई तत्व नहीं है तारीख 2 अप्रैल, 2012 का ऐसा कोई भी आदेश पर्याप्त नहीं किया गया, जिसके आधार पर 130 श्रमिकों को नियुक्त किया गया जैसी कि मताभिव्यक्ति माननीय उच्च न्यायालय द्वारा की गई है और इस प्रकार याचियों के साथ समान व्यवहार किए जाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता । आवेदकों ने आगे अभिकथित किया है कि अभिलेख पर तारीख 2 अप्रैल, 2012 की एक संसूचना उपलब्ध है किन्तु यह संसूचना वास्तव में सूचना का अधिकार के अन्तर्गत प्रस्तुत किए गए आवेदन का उत्तर है जिसके द्वारा आकस्मिक श्रमिकों की नियुक्ति के संबंध में सूचना की ईप्सा की गई है ।

2. आगे यह अभिकथित किया गया है कि आवेदकों/पुनर्विलोकन याचियों को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी कि 130 व्यक्तियों को वास्तव में तारीख 2 अप्रैल, 2012 के आदेश के निबंधनों के अनुसार नियुक्त किया गया था । वे तारीख 28 मई, 2013 के निर्णय के अनुपालन को प्रारूपित करने में व्यस्त थे और वास्तव में याचियों के दावों पर विचार किया गया था और उनको अस्वीकृत किया गया था । इसी दौरान रिट याचियों ने एक अवमानना याचिका फाइल की जिसमें माननीय न्यायालय ने एक अधिकारी के विरुद्ध आदेश पारित किया और 2016 के सितम्बर माह में उत्तर फाइल

किए जाने की इसी प्रक्रिया के दौरान इस तथ्य की जानकारी हुई कि तारीख 2 अप्रैल, 2012 का आदेश वास्तव में 130 व्यक्तियों को नियुक्ति प्रदान करने वाला आदेश नहीं था, बल्कि यह मात्र सूचना का अधिकार के अन्तर्गत फाइल किए गए आवेदन का उत्तर था । आगे यह अभिकथित किया गया है कि इस आदेश को जानकारी प्राप्त होने के पश्चात् आवेदक/पुनर्विलोकन याची संख्या 1 – प्रसार भारती, महानिदेशक, नई दिल्ली को अग्रेसित किया गया था जिन्होंने वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजीव शर्मा से राय मांगी और तत्पश्चात् पुनर्विलोकन याचिका फाइल किए जाने का निर्णय लिया गया ।

3. आवेदकों/पुनर्विलोकन याचियों ने आगे अभिकथित किया कि विलम्ब न तो जानबूझकर किया गया है न ही आशय पूर्वक, किन्तु यह विलम्ब ऊपरवर्णित कारणोंवश हो गया है । उन्होंने आगे अभिकथित किया है कि यदि विलम्ब को क्षमा नहीं किया गया और पुनर्विलोकन याचिका को अभिलेख पर मंजूर नहीं किया गया, तो आवेदकों/पुनर्विलोकन याचियों को अपूर्णनीय क्षति का सामना करना पड़ेगा । आवेदन के अंत में यह प्रार्थना की गई है कि न्यायालय पुनर्विलोकन याचिका फाइल किए जाने में हुए विलम्ब को क्षमा करने की कृपा करे ।

4. प्रत्यर्थियों ने आवेदकों के आवेदन का विरोध और खंडन करते हुए अभिवाक् किया कि तारीख 28 मई, 2013 के आदेश द्वारा माननीय न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्ति की रिट याचियों को उसी प्रकार से आकस्मिक श्रमिक मानते हुए कार्य पर लगाया जाए जैसे कि 130 आकस्मिक श्रमिकों को कार्य पर लगाया गया है ; ये आदेश वास्तव में इस मामले के प्रत्यर्थियों-आवेदकों द्वारा श्री जावेद अहमद दार नामक एक व्यक्ति, जिसने सूचना का अधिकार के अन्तर्गत आवेदन फाइल करते हुए आकस्मिक श्रमिकों को नियुक्ति किए जाने के संबंध में सूचना मांगी थी, को उपलब्ध कराई गई सूचना (जो इस रिट याचिका का संलग्नक-एम है) पर आधारित है । आगे यह दलील दी गई है कि उक्त संसूचना रिट याचिका का भाग है और संलग्नक-एम के रूप में संलग्न है । आगे यह अभिकथित किया गया है कि अभिलेख के आधार पर प्रकटतः कोई त्रुटि न होने के कारण पुनर्विलोकन याचिका फाइल किए जाने में कारित विलम्ब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया आवेदन खारिज किए जाने योग्य है चूंकि यह आवेदन अत्यधिक समय बाधित होने के कारण

पोषणीय नहीं है ।

5. मामले को सुना गया और उस पर विचार किया गया ।

6. इसको विवादित नहीं किया जा सकता कि परिसीमा विधि को विधि द्वारा विहित कठिनाइयों और बाध्यताओं को ध्यान में रखते हुए लागू किया जाना चाहिए । 1995 के जम्मू और कश्मीर परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के उपबंध, जो किसी विशिष्ट मामले में परिसीमा की अवधि को विस्तारित किए जाने के लिए उपबंधित करते हैं, के परिणामों से कोई नहीं बच सकता, किन्तु पुरोभाव्य शर्त यह है कि आवेदक को न्यायालय को इस बाबत संतुष्ट करना होगा कि अनुध्यात समयावधि के भीतर आवेदन/अपील/पुनर्विलोकन फाइल न किए जाने के लिए न्यायालय द्वारा मध्यक्षेप किए जाने की ईप्सा किए जाने के लिए पर्याप्त कारण है । इस बाबत न्यायालय को संतुष्ट करने का दायित्व, कि अपील या पुनर्विलोकन सम्यक् तत्परता के साथ फाइल की गई, उस व्यक्ति के कंधों पर होता है जो अनुतोष की ईप्सा करता है । न्यायालय ऐसे पक्षों की सहायता नहीं कर सकता जो विलम्ब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन में पर्याप्त कारण दर्शित नहीं करते और विलम्ब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदक द्वारा किए गए पक्षकथन अनियमित और गूढ़ है ।

7. आवेदकों-पुनर्विलोकन याचियों के आवेदन का अन्तर्वलित विषय पर विधि की कसौटी पर परीक्षण करते हुए यह लाभदायक होगा कि **जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य** बनाम **गाजी मोहिउद्दीन दार और अन्य**[1] वाले मामले के पैरा 6, 7 और 8 में अधिकथित विधि को शब्दशः प्रत्युत्पादित किया जाए :–

> "6. कल्याणकारी राज्य की संकल्पना के अन्तर्गत सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित किए जाने के प्रयोजनार्थ राज्य का यह बाध्यकारी कर्तव्य है कि लोक हित और लोक निधि को संरक्षित और परिरक्षित रखा जाए । चूंकि लोक राज्यकोष राज्य और उसके अभिकरणों के विभिन्न विभागों के अत्यधिक भारी भरकम खर्चों को वहन करता है, यह राज्य के लिए बाध्यकारी है कि वह अपने कर्तव्यों के निर्वहन में और सम्यक् तत्परता और अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने में शीघ्रता और मुस्तैदी बरते । यदि गुणागुण पर कोई उचित मामला

[1] 2010 (4) जे. के. जे. 638 (एच. सी.).

बनता हो और राज्य द्वारा बिलम्ब, जो आशयपूर्वक या अन्यथा कारणोंवश न हो, को क्षमा किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जाता है और उसको मंजूर नहीं किया जाता तो निश्चित रूप से लोक हित और लोक निधि को नुकसान होगा । दुर्भाग्यवश राज्य के अधिकारी और उसके अभिकरण इस धारणा के अन्तर्गत रहते हैं कि उनके द्वारा प्रत्येक मामले में अपील फाइल किए जाने में कारित विलम्ब अवश्य ही क्षमा हो जाएगा और वे ऐसे कुछ विनिश्चयों, जिनमें उन मामलों के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें पर्याप्त कारण दर्शित किए गए थे और उनको साबित भी किया गया था और विलम्ब को क्षमा कर दिया गया था, के आधार पर अपील फाइल किए जाने में कारित विलम्ब को गंभीरता से नहीं लेते हैं ।

7. पी. के. रामचन्द्रन **बनाम** केरल राज्य [ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 2276] वाले मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैरा 6 में जो अभिनिर्धारित किया, वह निम्नलिखित है –

> 'परिसीमा की अवधि किसी पक्ष विशेष को अप्रिय रूप से प्रभावित कर सकती है किन्तु इस विधि का उपयोजन, जहां कोई कानून इसके लिए उपबंधित करता हो, पूरी कठोरता के साथ किया जाना चाहिए और न्यायालय को साम्यापूर्ण आधारों पर परिसीमा की अवधि को विस्तारित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है । अतः, उच्च न्यायालय द्वारा जिस वैवेकिक शक्ति का प्रयोग किया गया, वह न तो उचित है और न ही विवेकपूर्ण । विलम्ब को क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ पारित आदेश को मान्य नहीं ठहराया जा सकता । अतः अपील मंजूर की जाती है और आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है । परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय में विलम्ब को क्षमा किए जाने के लिए फाइल किया गया आवेदन अस्वीकार किया जाता है और प्रथम प्रकीर्ण अपील परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण खारिज किया जाता है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।'

8. एक अन्य मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने सरकार द्वारा फाइल किए गए आवेदन पर 264 दिनों के असामान्य विलम्ब को क्षमा किए जाने के प्रश्न पर चर्चा करते हुए यह मताभिव्यक्ति की –

'2. तारीख 16 नवम्बर, 1993 को फाइल की गई यह विशेष इजाजत याचिका 264 दिवसों द्वारा विलम्बित है । पहले कुछ लक्ष्य तक यह न्यायालय यह मताभिव्यक्ति करती रही है कि यदि सरकार द्वारा फाइल की गई वे अपीलें परिसीमा के बिन्दु पर समाप्त कर दी गई तो लोक हित पर गंभीर रूप से विपरीत प्रभाव पड़ेगा । इसी प्रकार की मताभिव्यक्तियां पहले भी निरन्तर रूप से की जाती रही हैं । किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार के कार्यकरण में स्पष्ट रूप से कोई सुधार नहीं आया जैसा कि वर्तमान याचिका से स्पष्ट है जिसको नवम्बर, 1993 में फाइल किया गया था । विलम्ब का स्पष्टीकरण याची के स्वयं के शब्दों में उल्लिखित किया गया है :

* * *

3. यह स्पष्टीकरण विलम्ब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ वैवेकिक रूप से स्वीकार्य आधार को प्रस्तुत कर पाने में विफल रहा है । अनेक मामलों में इस न्यायालय द्वारा पूर्व में की गई मताभिव्यक्तियों के पश्चात् हमको यह आशा थी कि परिस्थितियों में सुधार आएगा । किन्तु इस आशावाद को सरकार से समर्थन प्राप्त नहीं हुआ । अब हम एक ऐसे बिन्दु पर पहुंच चुके हैं जिसके परे न्यायालय भी किसी मुकदमेबाज की सहायता नहीं कर सकता, चाहे वह मुकदमेबाज सरकार ही क्यों न हो, जो नौकरशाही की उदासीनता के बंधनों में जकड़ी हुई है । परिसीमा की विधि, जो प्रत्येक पर लागू होती है, को ध्यान में रखते हुए हम कोई अनुतोष प्रदान करने के निष्कर्ष पर नहीं पहुंचते । यह सत्य है कि सरकार को किसी अन्य निजी मुकदमेबाज की भांति नहीं समझा जाना चाहिए चूंकि वास्तव में सरकार के मामले में अपीलें फाइल किए जाने और उनको अभियोजित किए जाने का निर्णय व्यक्तिगत नहीं होता बल्कि यह एक संस्थागत विनिश्चय होता है जो निश्चित रूप से कुख्यात लालफीताशाही द्वारा लिया जाता है । किन्तु इसकी भी एक सीमा है । इस गुंजाइश के बाद भी इस मामले में विलम्ब के लिए प्रस्तुत किया गया स्पष्टीकरण जनसामान्य के हितों को संरक्षण प्रदान किए जाने के मामले में मात्र राज्य की उदासीनता

के व्यवहार को गंभीर ही बनाता है । (विलम्ब को क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ) फाइल किया गया शपथपत्र भी मात्र औपचारिकता को पूर्ण करने वाला ही है जिसमें इस आलोचना की गुंजाइश समाविष्ट है कि राज्य तत्परता की आवश्यकता के महत्व को नहीं समझता, उन मामलों में भी नहीं जहां उसके स्वयं के हित प्रभावित हो रहे हैं ।'''

8. हमारे समक्ष उपस्थित मामले में ऊपर अधिकथित विधि के विनिश्चयानुपात को लागू करते हुए, पुनर्विलोकन याचिका को फाइल किए जाने में 1230 दिनों का जो अन्धाधुन्ध विलम्ब हुआ है, उसके संबंध में कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है सिवाय नियमित शब्दों और वाक्यांशों के । इसमें कोई संदेह नहीं कि विलम्ब क्षमा किए जाने के लिए उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए यदि आवेदक द्वारा घोर उपेक्षा या जानबूझकर अकर्मण्यता या सद्भाविकता की कमी रही हो किन्तु हमारे समक्ष उपस्थित मामले में आवेदकों ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजनार्थ पूरा समय लिया कि पुनर्विलोकन याचिका फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ विलम्ब को क्षमा किए जाने के लिए आवेदन फाइल किया जाना है । **भारत संघ** बनाम **नृपेन शर्मा**[1] वाले मामले में अधिकथित विधि इस सिद्धांत का उल्लेख करती है और यह अधिकथित करती है :–

"..... 3. यह अपील गुवाहाटी उच्च न्यायालय (असम उच्च न्यायालय, नागालैण्ड, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश) की खंड न्यायपीठ द्वारा 2006 के रिट आवेदन संख्या रिट आवेदन संख्या 72020 में 2007 के प्रकीर्ण आवेदन संख्या 1569 में पारित निर्णय से उद्भूत हुई है । इस अपील को भारत संघ द्वारा फाइल किया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा 239 दिनों के असामान्य विलम्ब के कारण खारिज कर दिया गया था । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अपील को खारिज करते हुए यह मताभिव्यक्ति की :–

'हमने इस याचिका की अन्तर्वस्तु का परिशीलन किया है । इस मामले में विलम्ब इसलिए कारित हुआ क्योंकि प्रत्यर्थियों ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में पूरा समय लिया कि क्या

---

[1] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1237.

इस निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल की जाए या नहीं । ऐसा नहीं है कि उनको समय के भीतर निर्णय लेने से किसी ऐसे कारण द्वारा रोका गया हो, जो उनके नियंत्रण के बाहर हो । फिर भी मामले के गुणागुण पर विचार करते हुए ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि अपील के तर्कसंगत आधार मौजूद थे । इन परिस्थितियों में हम इस याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाते ।'

4. हमने विलम्ब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन जिसको उच्च न्यायालय में फाइल किया गया था, का परिशीलन किया है । हमारी सुविचारित राय में उच्च न्यायालय अपील को विलम्ब के आधार पर खारिज करने में पूर्णतः न्यायसंगत था क्योंकि विलम्ब को क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई पर्याप्त कारण दर्शित नहीं किया गया था । .....

6. भारत संघ को सावधान रहना चाहिए था, विशेष रूप से इस सिविल अपील को फाइल करने में क्योंकि खंड न्यायपीठ ने आक्षेपित आदेश फाइल करने के द्वारा अपील को विलम्ब के आधार पर खारिज कर दिया है । यह घोर आक्रोश और निराशा का विषय है कि भारत संघ द्वारा फाइल किए गए अधिकांश मामले परिसीमा द्वारा निराशाजनक रूप से बाधित होते हैं और इन मामलों को फाइल किए जाने में कारित असमान्य विलम्ब को क्षमा किए जाने के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया जाता ।''

9. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **ईशा भट्टाचार्जी** बनाम **रघुनाथपुर नाफर एकेडमी**[1] दिए गए एक अन्य सुविवेचित निर्णय का अवलंब लिया जा सकता है, जिसके सुसंगत उद्धरण निम्नलिखित हैं :–

"..... 21.2 (ii) शब्दों 'पर्याप्त कारण' को उनकी उचित भावना, दर्शन और प्रयोजन के संबंध में इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए कि ये शब्द आधारभूत रूप से लचीले हैं और इनको अभिभावी तथ्यात्मक स्थिति के उचित परिप्रेक्ष्य में लागू किया जाता है । 21.9(ix) किसी पक्ष का उसकी अकर्मण्यता और उपेक्षा के संबंध में आचरण, व्यवहार और रवैया सुसंगत कारक होते हैं, जिन पर विचार किया जाना चाहिए । इसी कारणवश मूल सिद्धांत यह है

[1] (2013) 12 एस. सी. सी. 649.

कि न्यायालयों को दोनों पक्षों के संबंध में न्याय का संतुलन बराबर रखना होता है और उदारतापूर्ण दृष्टिकोण के नाम पर इस सिद्धांत का अनदेखा नहीं किया जा सकता । 21.10(x) यदि प्रस्तुत किया गया स्पष्टीकरण गढ़ा गया स्पष्टीकरण है या आवेदन में दिए गए आधार काल्पनिक हैं, तो न्यायालय को दूसरे पक्ष को अनावश्यक रूप से मुकदमेबाजी का सामना करने से बचाने के प्रयोजनार्थ सतर्क रहना चाहिए ..... 21.12(xii) तथ्यों के सम्पूर्ण समुच्चय की सावधानीपूर्वक संवीक्षा होनी चाहिए और न्यायालय का दृष्टिकोण न्यायिक विवेक के उदाहरणों, जो उद्देश्यपूर्ण तर्कसंगतता पर आधारित हों और न कि व्यक्तिगत संकल्पना पर आधारित होना चाहिए । 21.13(xiii) राज्य या किसी सामूहिक विषय का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी लोक निकाय या किसी अस्तित्व को कुछ स्वीकार्य छूट प्रदान की जानी चाहिए । 22.1(क) विलम्ब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया आवेदन सावधानीपूर्वक प्रारूपित किया जाना चाहिए, न कि अव्यवस्थित रूप से जिससे कि इस संकल्पना को बल मिल सके कि न्यायालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि विलम्ब को इस सिद्धांत की आधारशिला पर क्षमा करें कि गुणागुण के आधार पर किसी मुकदमे का न्यायनिर्णयन न्याय वितरण प्रणाली के लिए अत्यन्त पावन कार्य है ..... 31. जब कोई न्याय की विफलता या ज्ञान के अभाव के आधार पर सात वर्षों का विलम्ब क्षमा किए जाने की ईप्सा करते हुए आवेदन प्रस्तुत करता है, तो न तो सुविधा और न ही भोग-विलास के लिए कोई स्थान शेष रह जाता है ।"

10. जो बातें ऊपर कहीं जा चुकी हैं, की पुनरावृत्ति करते हुए, यह अभिकथित किया जाता है आवेदक समय सीमा के भीतर अपने दावे को अभियोजित करने के प्रति लापरवाह थे और पुनर्विलोकन याचिका फाइल किए जाने में विलम्ब के लिए प्रस्तुत किया गया स्पष्टीकरण न तो सटीक है और न ही युक्तिसंगत । ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदन बिना पूर्ण जानकारी के उपेक्षापूर्वक प्रारूपित किया गया और उसमें उल्लिखित घटनाओं और आधारों के विवरणों को, जिनका आश्रय लिया गया, को आवेदन प्रस्तुत करते हुए सुविधा और भोग-विलास का ध्यान रखा गया ।

11. इस दलील को पुनः न्यायोचित ठहराते हुए सी. ओ. डी. संख्या

237/2016 (एल. पी. ए. 06/2016) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा अधिकथित विधि का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया :–

> "1. संलग्न अपील को फाइल करने में 310 दिनों का विलम्ब हुआ है । सी. ओ. डी. आवेदन जिस पर विचार किया जा रहा है, अस्पष्ट है और अपील बिना दिन-प्रतिदिन के विलम्ब के स्पष्टीकरण के और बिना किसी विनिर्दिष्ट विवरण के फाइल की गई है । एकमात्र स्पष्टीकरण जो दिया गया है, यह है कि अपीलार्थी ने निर्णय की प्राप्ति के पश्चात् निर्णय का परीक्षण किया, जिसमें कुछ समय लगा और तत्पश्चात् निर्णय को राज्य विधि और संसदीय मामलों के मंत्रालय को आगे की कार्यवाही के लिए भेजा गया । आगे यह अभिकथित किया गया है कि विधि और संसदीय मामलों के मंत्रालय ने निर्णय का परीक्षण किया और परीक्षण करने के पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि एक एल. पी. ए. फाइल की जानी चाहिए और इसमें भी पर्याप्त समय लगा और अंततः विधि विभाग द्वारा अपील फाइल किए जाने के लिए मंजूरी प्रदान की गई ।
>
> 2. इस बाबत कोई भी कारण दर्शित नहीं किया गया है कि प्रथमदृष्ट्या निर्णय के परीक्षण में समय क्यों लगा और द्वितीयतः विधि विभाग ने अपील फाइल किए जाने का निर्णय लेने में पर्याप्त समय क्यों लिया ।
>
> 3. स्पष्टतः, आवेदकों/अपीलार्थियों ने विलम्ब के लिए पर्याप्त कारण दर्शित नहीं किया है । परिणामस्वरूप सी. ओ. डी. आवेदन खारिज किया जाता है । संलग्न अपील भी खारिज की जाती है ।"

12. यहां पर यह उल्लेख किया जाना उचित होगा कि घटनाओं की क्रमबद्धता के कारण आवेदकों/पुनर्विलोकन याचियों ने 3 वर्ष की लम्बी अवधि के विलम्ब के पश्चात् पुनर्विलोकन याचिका प्रस्तुत की, अतः उनको इस न्यायालय को इस बाबत संतुष्ट करना होगा कि पुनर्विलोकन याचिका प्रस्तुत किए जाने में कारित विलम्ब न तो स्वैच्छिक था न ही जानबूझकर । ऐसा नहीं किया गया है । आवेदन में बहुत ही उदासीन कारण बताया गया है इसमें दर्शित विवरणों और घटनाओं से यह स्पष्ट है कि इस मामले में स्वतंत्रता और भोग-विलास के साथ कार्य किया गया ।

13. विवादों के गुणागुण पर विचार करते हुए यह कहा जाना

आवश्यक है कि स्थिरीकृत विधि यह है कि यह मात्र एक त्रुटि है जो अभिलेख को दृष्टिगत करते हुए ही स्पष्ट हो जाती है, जिस पर इस पुनर्विलोकन याचिका में विचार किया जा सकता है और उसका निपटारा किया जा सकता है । किसी आदेश के पुनर्विलोकन की परिधि अत्यंत सीमित होती है और इस आदेश पर उस मामले में, जिसको पहले ही निर्णीत किया जा चुका है, पर पुनः बहस के लिए कोई फोरम उपबंधित नहीं किया जा सकता । पुनर्विलोकन को न्यायालय के विचार/राय को परिवर्तित करने के लिए एक औजार के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता । इस स्थिति को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **नोर्दन इंडिया केट्रर्स** बनाम **उप-राज्यपाल, दिल्ली**[1], **अजित कुमार राठ** बनाम **उड़ीसा राज्य**[2], **खेला बनर्जी और एक अन्य** बनाम **सिटी मोन्टेसरी स्कूल और अन्य**[3] और **कमलेश वर्मा** बनाम **मायावती और अन्य**[4] वाले मामलों में स्पष्टतः बताया गया है । उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा **नोर्दन इंडिया केट्रर्स** बनाम **उप-राज्यपाल, दिल्ली** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय को भी निर्दिष्ट किया जाता है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि कोई पक्ष मामले की पुनः सुनवाई और पुनः निर्णय के प्रयोजनार्थ किसी आदेश के पुनर्विलोकन की ईप्सा का हकदार नहीं होता । माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने बहुमत द्वारा व्यक्त किए गए मत के साथ सहमति व्यक्त करते हुए अपना मत निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया :–

> "पुनर्विलोकन का अभिवाक्, जब तक कि प्रथम न्यायिक मत को स्पष्टतया तोड़ा-मरोड़ा नहीं गया है, वह उसी प्रकार से है जैसे कि किसी बालक द्वारा चन्द्रमा की इच्छा करना, किसी व्यक्ति द्वारा कमियों की खोज करना और उसके आधार पर परिणाम को पलटने की ईप्सा करना ..... । किसी काउंसेल की राय में पुनर्विलोकन दुबारा अधिनिर्णय को ठीक नहीं कर सकता । अतः जो विधि अधिकथित की गई है उसी का अवलंब लिया जाता है ।"

---

[1] (1980) 2 एस. सी. सी. 167 = ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 674.
[2] (1999) 9 एस. सी. सी. 596.
[3] (2013) 7 एस. सी. सी. 615.
[4] (2013) 8 एस. सी. सी. 320.

14. आवेदकों/पुनर्विलोकन याचियों ने हमारे समक्ष निवेदन किया कि ऐसा कोई निर्देश नहीं दिया गया है जिसके द्वारा यह चित्रित किया जाए कि 130 आकस्मिक श्रमिकों को किसी आदेश द्वारा नियुक्त किया गया था और न्यायालय ने ऐसा अभिकथित करके त्रुटि कारित की । अभिलेखों से इस तथ्य के परिसाक्ष्य की पुष्टि होती है कि यह प्रत्यर्थियों/इसमें के आवेदकों द्वारा सूचना का अधिकार के अन्तर्गत उपलब्ध कराई गई सूचना के आधार पर हुआ है, जिसके द्वारा इस बात को प्रकटतः स्पष्ट किया गया है कि 130 व्यक्तियों को आकस्मिक श्रमिकों के रूप में नियुक्त किया गया । क्या उपलब्ध कराई गई सूचना किसी आदेश की प्रकृति में या किसी सूचना की प्रकृति में, यह नितान्त रूप से अतात्विक है, जैसा कि सूचना अभिलेख पर उपलब्ध है । आवेदकों/पुनर्विलोकन याचियों ने विनिर्दिष्ट रूप से आवेदन प्रस्तुत करने वालों को सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन सूचित किया है कि 130 व्यक्तियों को आकस्मिक श्रमिकों के रूप में नियुक्त किया गया है । यह दलील रिट याचिका के विनिर्धारण के समय न्यायालय के समक्ष भी दी गई थी और अब इस दलील को न्यायालय के विचार/मत को परिवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ औजार के रूप में पुनः प्रयोग किए जाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती ।

15. जो ऊपर कहा और किया गया है, के संदर्भ को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय की सुविचारित राय यह है कि आवेदक पुनर्विलोकन याचिका फाइल करते हुए विलम्ब को क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन में 1230 दिनों के विलम्ब का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहे हैं । परिणामस्वरूप, विलम्ब को क्षमा किए जाने के लिए फाइल किया गया आवेदन खारिज किया जाता है । पुनर्विलोकन याचिका भी ऊपर अधिकथित विधि को दृष्टि में रखते हुए पोषणीय नहीं पाई जा सकती ।

आवेदन खारिज किया गया ।

अवि.

चन्दरेश्वर प्रसाद

बनाम

अंजलि कुमारी

तारीख़ 9 मई, 2017

न्यायमूर्ति एच. सी. मिश्रा और न्यायमूर्ति (डा.) एस. एन. पाठक

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1) (i-क) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्ज़ी – पत्नी द्वारा क्रूरता बरते जाने का आरोप – पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद का विरोध किया जाना – पक्षकारों द्वारा लगभग 12 वर्षों से पृथक्-पृथक् रहना – पत्नी द्वारा अपील प्रक्रम पर पति के साथ विवाह-बंधन निभाने से इनकार – पत्नी को उसकी इच्छा के विरुद्ध पति के साथ रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता – ऐसी स्थिति में विवाह विघटन अनुज्ञात किया जाना उचित होगा तथापि, पत्नी निर्वाह-व्यय की हक़दार होगी ।

अपीलार्थी-पति 2005 के एम. टी. एस. सं. 209 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रांची द्वारा तारीख 4 दिसंबर, 2008 को पारित उस निर्णय और डिक्री से व्यथित हुआ है जिसके द्वारा पक्षकारों के बीच विवाह के विघटन के लिए वाद जो अपीलार्थी-पति द्वारा निचले न्यायालय में क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री का अनुरोध करते हुए फाइल किया गया था, प्रत्यर्थी द्वारा विरोध करने पर खारिज किया गया है । संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि पक्षकारों का विवाह हिन्दू रीतियों और रूढ़ियों के अनुसार तारीख 17 अप्रैल, 2003 को रांची में हुआ था । अपीलार्थी-पति का यह पक्षकथन है कि वे विवाह के तुरन्त पश्चात् 6 दिन के नियत कार्यक्रम (प्रोग्राम) के अधीन हनीमून के लिए पुरी गए थे तथापि, प्रत्यर्थी-पत्नी के गुस्सैल और चिड़चिड़े व्यवहार के कारण 4 दिन के पश्चात् ही अधूरे प्रोग्राम के अधीन वापस आ गए । यह अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी का अपीलार्थी-पति और उसके नातेदारों के प्रति व्यवहार गैर-जिम्मेदाराना था और मामूली बातों पर भी वह अपना आपा खो देती थी और अपीलार्थी और उसके नातेदारों के साथ दुर्व्यवहार करती थी । यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी पति पर मकान अपने नाम में अंतरित करने का दबाव डालती थी और वह तारीख 6 मई, 2004 को अपनी ससुराल छोड़ कर चली गई थी । पति तारीख 24 अगस्त, 2004

को अपनी पत्नी के घर मिलने गया तो उससे घर जमाई बनकर रहने के लिए कहा गया था, जिसे उसने स्वीकार नहीं किया । अत्यधिक कहने-सुनने के पश्चात् वह तारीख 30 अगस्त, 2004 को अपनी ससुराल वापस आ गई किन्तु उसके माता-पिता तारीख 5 जनवरी, 2005 को पुनः उसे वापस ले गए । वह पुनः होली के अवसर पर वापस आई थी और अंततः प्रत्यर्थी-पत्नी तारीख 14 अगस्त, 2005 को अपना बैग और सामान साथ लेकर अपनी ससुराल से चली गई तथा स्त्री-धन और आभूषण भी साथ ले गई । यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने 3,00,000/- रुपए की मांग की और यह कहा गया है कि जिसके न देने पर पति को किसी दांडिक मामले में मिथ्या अन्तर्वलित करने की धमकी दी गई थी । यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी और उसकी माता उक्त मांग की पूर्ति के लिए अपीलार्थी-पति के मकान पर आए थे और उन्होंने अपीलार्थी के मकान में घुसकर 1,100/- रुपए की चोरी की जो अपीलार्थी-पति की ड्रेसिंग टेबल में रखे हुए थे और पिता की मेज से 800/- रुपए निकाले और साथ ही अपीलार्थी की घड़ी उठा ली । पति ने इन अभिकथनों के साथ हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन निचले न्यायालय में वैवाहिक वाद फाइल किया था । निचले न्यायालय द्वारा वाद खारिज किए जाने पर अपीलार्थी-पति द्वारा वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – निचले न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी-पत्नी और पिता द्वारा दिए गए साक्ष्य और इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि पक्षकार पिछले लगभग 12 वर्षों से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं, न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि प्रत्यर्थी-पत्नी को अपने पति से वैवाहिक नातेदारी बनाए रखने हेतु साथ रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता और इसके अतिरिक्त यह एक ऐसा मामला है जिसमें दोनों पक्षकारों की आयु को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए इसलिए यह उचित होगा कि उनके बीच वैवाहिक नातेदारी को समाप्त कर दिया जाए । न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उद्भूत होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी को क्या निर्वाह-व्यय अनुज्ञात किया जाना चाहिए । यह स्वीकृत तथ्य है कि अर्जीदार-अपीलार्थी रांची में झारखंड अनुसूचित जनजाति विकास सोसायटी में लाभप्रद रूप से नियोजित है । यद्यपि यह स्वीकृत स्थिति है कि वर्ष 2013 में अपीलार्थी-पति को लगभग 14,000/- रुपए का सम्पूर्ण वेतन प्राप्त हो रहा था तथापि, प्रत्यर्थी-पत्नी के अनुसार अपीलार्थी-पति को वर्ष 2014 में कुल वेतन 19,080/- रुपए प्राप्त हो रहा था । वर्तमान में न्यायालय यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगा सकता

है कि वेतन में सामान्य बढ़ोतरी को दृष्टिगत करते हुए अर्जीदार इस समय 20,000/- रुपए से अधिक वेतन प्राप्त कर रहा होगा । न्यायालय को यह भी सूचित किया गया है कि भरण-पोषण के एक पृथक् मामले में प्रत्यर्थी-पत्नी को 4,000/- रुपए प्रतिमास मंजूर किए गए हैं जिसे वर्तमान में अपीलार्थी-पत्नी द्वारा 2015 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 829 में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है और जिसमें 8 सितंबर, 2015 के अंतरिम आदेश द्वारा प्रत्यर्थी-पत्नी को मासिक भरण-पोषण के रूप 2,000/- रुपए प्रतिमास की धनराशि संदत्त की जा रही है । पूर्वतर अवसरों पर जब यह मामला पेश किया गया था तो उस समय पति को यह प्रस्थापना की गई थी कि वह प्रत्यर्थी-पत्नी को 10,00,000/- रुपए की जीवन निर्वाह-व्यय धनराशि एकमुश्त संदत्त करे जिसके लिए प्रत्यर्थी-पत्नी तैयार हो गई थी तथापि, अपीलार्थी-पति अपनी पत्नी को 6,00,000/- रुपए से अधिक का संदाय करने के लिए तैयार नहीं हुआ था । न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि वर्तमान खर्चा सूचकांक को ध्यान में रखते हुए पति द्वारा प्रस्तावित धनराशि प्रत्यर्थी-पत्नी के लिए अत्यधिक अपर्याप्त होगी । वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि 10,00,000/- रुपए की धनराशि ऐसी न्यूनतम धनराशि है जो अपीलार्थी-पत्नी को एक बार दी जाने वाली जीवन निर्वाहिका धनराशि हो सकती है । तथापि, अपीलार्थी-पति को दो विकल्प प्रस्तावित किए गए हैं जिनमें पहला विकल्प यह है कि वह प्रत्यर्थी-पत्नी को एकमुश्त स्थायी निर्वाहिका के रूप में 10,00,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करे जो अपीलार्थी-पति को प्रत्यर्थी-पत्नी के किसी मासिक भरण-पोषण का संदाय करने से भी विमुक्त करेगा । दूसरा विकल्प यह दिया गया है कि वह प्रत्यर्थी-पत्नी को निर्वाहिका के रूप में 5,00,000/- रुपए का संदाय करे और 5,000/- रुपए प्रतिमास मासिक भरण-पोषण के रूप में संदाय करे जो कि लगभग 20,000/- रुपए प्रतिमास के उसके वेतन का लगभग 25 प्रतिशत होगा । उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थी-चन्दरेश्वर प्रसाद और प्रत्यर्थी-पत्नी अंजलि कुमारी के बीच विवाह को एतद्द्वारा इस शर्त के अध्यधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया जाता है कि या तो अपीलार्थी-पति आज से 4 मास की अवधि के बीच एकमुश्त स्थायी निर्वाहिका के रूप में प्रत्यर्थी-पत्नी को 10,00,000/- रुपए की धनराशि संदत्त करे अथवा वह प्रत्यर्थी-पत्नी को निर्वाहिका के रूप

में 5,00,000/- रुपए की धनराशि और प्रत्येक कलेण्डर मास की 10 तारीख तक मासिक भरण-पोषण के रूप में 5,000/- रुपए प्रतिमास की दर से धनराशि संदत्त करे । । यदि अपीलार्थी दूसरे विकल्प को चुनता है तो वह आज से 4 मास की अवधि के भीतर 2015 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 829 में यह वचनबंध करते हुए समुचित आवेदन फाइल करेगा कि वह प्रत्यर्थी को मासिक भरण-पोषण के रूप में प्रतिमास 5,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करता रहेगा । विवाह-विच्छेद की डिक्री उस तारीख से प्रभावी मानी जाएगी जिस तारीख को या तो अपीलार्थी, प्रत्यर्थी-पत्नी को स्थायी निर्वाहिका का संदाय करे या अपीलार्थी-पति द्वारा दूसरा विकल्प प्रयोग किए जाने के मामले में उस तारीख को प्रभावी होगी जिसको कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी-पत्नी को निर्वाहिका के रूप में 5,00,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करेगा और जिस तारीख को वह 2015 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 829 में यह वचनबंध फाइल करेगा कि वह प्रत्यर्थी-पत्नी को मासिक भरण-पोषण के रूप में प्रतिमास 5,000/- रुपए की धनराशि का संदाय किया करेगा । (पैरा 12, 13, 14, 15 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 2384 : **कल्याण डे चौधरी** बनाम **रीता डे चौधरी नी नंदी** ; 15

[1971] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 234 = (1970) 3 एस. सी. सी. 129 : **डा. कुलभूषण कुंवर** बनाम **राजकुमारी और एक अन्य** । 15

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की प्रथम अपील (डी. बी.) सं. 3.

2005 के एम. टी. एस. सं. 209 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रांची द्वारा तारीख 4 दिसंबर, 2008 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री महेश तिवारी

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री प्रमोद कुमार और किशलय कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) एस. एन. पाठक ने दिया ।

न्या. (डा.) पाठक – अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल और प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल को सुना गया ।

2. अपीलार्थी-पति 2005 के एम. टी. एस. सं. 209 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रांची द्वारा तारीख 4 दिसंबर, 2008 को पारित उस निर्णय और डिक्री से व्यथित हुआ है जिसके द्वारा पक्षकारों के बीच विवाह के विघटन के लिए वाद जो अपीलार्थी-पति द्वारा निचले न्यायालय में क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री का अनुरोध करते हुए फाइल किया गया था, प्रत्यर्थी द्वारा विरोध करने पर खारिज किया गया है ।

3. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि पक्षकारों का विवाह हिन्दू रीतियों और रूढ़ियों के अनुसार तारीख 17 अप्रैल, 2003 को रांची में हुआ था । अपीलार्थी-पति का यह पक्षकथन है कि वे विवाह के तुरन्त पश्चात् 6 दिन के नियत कार्यक्रम (प्रोग्राम) के अधीन हनीमून के लिए पुरी गए थे तथापि, प्रत्यर्थी-पत्नी के गुस्सैल और चिड़चिड़े व्यवहार के कारण 4 दिन के पश्चात् ही अधूरे प्रोग्राम के अधीन वापस आ गए । यह अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी का अपीलार्थी-पति और उसके नातेदारों के प्रति व्यवहार गैर-जिम्मेदाराना था और मामूली बातों पर भी वह अपना आपा खो देती थी और अपीलार्थी और उसके नातेदारों के साथ दुर्व्यवहार करती थी । यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी पति पर मकान अपने नाम में अंतरित करने का दबाव डालती थी और वह तारीख़ 6 मई, 2004 को अपनी ससुराल छोड़ कर चली गई थी । पति तारीख 24 अगस्त, 2004 को अपनी पत्नी के घर मिलने गया तो उससे घर जमाई बनकर रहने के लिए कहा गया था, जिसे उसने स्वीकार नहीं किया । अत्यधिक कहने-सुनने के पश्चात् वह तारीख 30 अगस्त, 2004 को अपनी ससुराल वापस आ गई किन्तु उसके माता-पिता तारीख 5 जनवरी, 2005 को पुन: उसे वापस ले गए । वह पुन: होली के अवसर पर वापस आई थी और अंतत: प्रत्यर्थी-पत्नी तारीख 14 अगस्त, 2005 को अपना बैग और सामान साथ लेकर अपनी ससुराल से चली गई तथा स्त्री-धन और आभूषण भी साथ ले गई । यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने 3,00,000/- रुपए की मांग की और यह कहा गया है कि जिसके न देने पर पति को किसी दांडिक मामले में मिथ्या अन्तर्वलित करने की धमकी दी गई थी । यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी और उसकी माता उक्त मांग की पूर्ति के लिए अपीलार्थी-पति के मकान पर

आए थे और उन्होंने अपीलार्थी के मकान में घुसकर 1,100/- रुपए की चोरी की जो अपीलार्थी-पति की ड्रेसिंग टेबल में रखे हुए थे और पिता की मेज से 800/- रुपए निकाले और साथ ही अपीलार्थी की घड़ी उठा ली । पति ने इन अभिकथनों के साथ हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 (1) (i-क) के अधीन निचले न्यायालय में वैवाहिक वाद फाइल किया था ।

4. प्रत्यर्थी-पत्नी को सूचना भेजे जाने पर वह निचले न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुई और उसने अपना लिखित कथन फाइल किया जिसमें उसने विवाह और हनीमून के लिए पुरी जाने के तथ्यों को स्वीकार किया । प्रत्यर्थी-पत्नी ने पति द्वारा फाइल की गई अर्जी में किए गए सभी अन्य अभिकथनों से इनकार किया । प्रत्यर्थी-पत्नी के पक्षकथनानुसार उसके पति और उसके कुटुंब के सदस्यों द्वारा उसके साथ क्रूरता बरती गई थी और उसे 50,000/- रुपए की मांग के लिए प्रताड़ित किया गया था और जब वह मांग पूरी नहीं कर सकी तो उसे उसकी ससुराल से निकाल दिया गया । उसने अपने लिखित कथन में यह भी कहा है कि उसने अर्जीदार-पति या उसके कुटुंब के सदस्यों के साथ कभी भी कुछ गलत नहीं किया ।

5. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निचले न्यायालय द्वारा विवाद्यक विरचित किए गए थे जिसमें क्रूरता से संबंधित विवाद्यक भी सम्मिलित है । आक्षेपित निर्णय से यह उपदर्शित होता है कि निचले न्यायालय में अर्ज़ीदार-अपीलार्थी की ओर से स्वयं सहित चार साक्षियों की परीक्षा कराई गई थी । अन्य तीन साक्षी उसके मित्र हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि अर्ज़ीदार-अपीलार्थी के कुटुंब के किसी सदस्य की परीक्षा नहीं कराई गई । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी की ओर से परीक्षा किए गए चार साक्षियों में स्वयं प्रत्यर्थी और उसकी माता सम्मिलित हैं जिनकी क्रमश: डी. डब्ल्यू. 1 और डी. डब्ल्यू. 3 के रूप में परीक्षा की गई है ।

6. अर्ज़ीदार-अपीलार्थी ने जिसकी ए. डब्ल्यू.-1 के रूप में परीक्षा की गई है, यह कहा है कि विवाह के तुरन्त पश्चात् वे हनीमून के लिए पुरी गए थे तथापि, प्रत्यर्थी के क्रूरतापूर्ण व्यवहार के कारण प्रोग्राम बीच में ही रोक दिया गया और वे जल्द ही वापस आ गए । तारीख 6 मई, 2004 को प्रत्यर्थी का भाई उसके घर आया और प्रत्यर्थी को उसके घर (मायके) ले गया । प्रत्यर्थी ने अर्जीदार और उसके कुटुंब के सदस्यों की अनुमति के बिना नातेदारों की मौजूदगी में अपनी ससुराल छोड़ दी । तारीख 5 जनवरी, 2005 को प्रत्यर्थी अपने बैग और सामान के साथ अपनी ससुराल छोड़कर चली गई तथापि, अधिक कहने-सुनने पर वर्ष 2005 में होली के अवसर पर

वापस आ गई और पुन: तारीख 14 अगस्त, 2005 को अपने बैग और सामान के साथ अपनी ससुराल छोड़ कर चली गई । उसने तीन लाख रुपए की भी मांग की थी और वह मकान अपने नाम में अंतरित करने के लिए बल दे रही थी और ऐसा न करने पर उन्हें किसी दांडिक मामले में मिथ्या अन्तर्वलित करने की धमकी दे रही थी । अर्जीदार ने प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा गर्भपात कराने का भी कथन किया है और इस प्रक्रम पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने भी बलपूर्वक अपना गर्भपात कराने के बारे में अपने साक्ष्य में कहा है तथापि, इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि इन तथ्यों के बारे में किसी पक्षकार ने अभिवचनों में कुछ नहीं कहा है, निचले न्यायालयों द्वारा इन साक्ष्यों पर विचार नहीं किया गया । अपीलार्थी की ओर से परीक्षा किए गए अन्य साक्षी ने केवल प्रत्यर्थी-पत्नी के व्यवहार के संबंध में कथन किया है, तथापि, यह तथ्य रह जाता है कि वह पति के कुटुंब के सदस्य नहीं हैं । निचले न्यायालय ने इस तथ्य पर भी विचार किया है कि यद्यपि पत्नी और उसकी माता के विरुद्ध चोरी करने के अभिकथन किए गए हैं तथापि, स्वयं अपीलार्थी द्वारा या उसके किसी अन्य साक्षी द्वारा इन अभिकथनों के बारे में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है ।

7. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी की ओर से परीक्षा किए गए साक्षियों ने जिनमें स्वयं प्रत्यर्थी सम्मिलित है, यह कहा है कि उसके साथ क्रूरता बरती गई थी और उसकी ससुराल वालों ने दहेज की मांग के लिए उसे प्रताड़ित किया था और उसे उसकी ससुराल से निकाल दिया था । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि दहेज की मांग के लिए उस पर हमला किया गया था और उसे उसकी ससुराल से निकाल दिया गया था । पत्नी ने अपने साक्ष्य में पति और ससुराल वालों के विरुद्ध एक दांडिक मामला फाइल करने के बारे में स्वीकार किया है । प्रत्यर्थी के पिता ने जिसकी डी. डब्ल्यू.-3 के रूप में परीक्षा की गई है, यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसकी पुत्री के साथ दहेज में 50,000/- रुपए की दहेज की मांग के लिए क्रूरता बरती गई थी । उक्त मांग के संबंध में जानकारी होने पर वह तारीख 20 जनवरी, 2006 को अर्जीदार के मकान पर गया था तथापि, उसे 7.30 बजे अपराह्न तक मकान में प्रवेश करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया गया और उसने अपनी पुत्री को रोते हुए देखा था ।

8. निचले न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य पर चर्चा करने के पश्चात् यह पाया कि अर्जीदार के साक्ष्य में केवल यह आया है कि विरोधी पक्षकार अर्जीदार और उसके परिवार वालों के साथ भद्दी भाषा का प्रयोग

करती थी और वह उनके साथ रहने के लिए तैयार नहीं थी । निचले न्यायालय ने इस तथ्य पर भी विचार किया है कि वर्तमान स्थिति में प्रत्यर्थी अपने पति और उसके परिवार के साथ रहने के लिए तैयार नहीं है । तथापि, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि भद्दी भाषा का प्रयोग करना इस प्रकार की क्रूरता नहीं है जिससे पक्षकारों के बीच नातेदारी खत्म कर दी जाए क्योंकि वैवाहिक नातेदारी में अक्सर ऐसा होता रहता है । न्यायालय ने इन निष्कर्षों के साथ वैवाहिक वाद खारिज कर दिया ।

9. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि निचले न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय पूर्ण रूप से अवैध है और इसे विधि की दृष्टि में कायम नहीं रखा जा सकता । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि स्वीकृतत: इस समय दोनों पक्षकार तारीख 14 अगस्त, 2005 से अर्थात् लगभग 12 वर्षों से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और विद्यमान परिस्थितियों में पक्षकारों के बीच किसी समझौते की आशा नहीं है । यहां तक झारखंड राज्य विधिक सेवा प्राधिकारी के प्रशिक्षित मध्यस्थ द्वारा पक्षकारों के बीच विवाद में समझौता कराने का प्रयास किया गया जो विफ़ल हो गया । तद्नुसार विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी-पत्नी के कार्य क्रूरता के समान हैं और यह एक ऐसा ठीक मामला है जिसमें वाद डिक्री किया जाना चाहिए ।

10. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील देते हए अनुरोध का विरोध किया है कि यद्यपि आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है तथापि, वर्तमान स्थिति में और पक्षकारों के बीच लंबे समय से पृथक्करण को देखते हुए प्रत्यर्थी-पत्नी अब अपने पति के साथ रहने की इच्छुक नहीं है और इसलिए वह भी वैवाहिक बंधन को समाप्त करना चाहती है । वस्तुत: स्वयं प्रत्यर्थी द्वारा तथा उसके पिता के द्वारा भी यह साक्ष्य दिया गया है कि उसके साथ क्रूरता बरती गई थी और ससुराल वालों के द्वारा दहेज की मांग के लिए उसे प्रताड़ित किया गया था और प्रत्यर्थी के पक्षकथनानुसार अर्जीदार द्वारा क्रूरता बरते जाने का मामला बनता है । इस तथ्य को भी स्वीकार किया गया है कि दोनों पक्षकार तारीख 14 अगस्त, 2005 से अर्थात् पिछले लगभग 12 वर्षों से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं ।

11. हमने झारखंड राज्य विधिक सेवा प्राधिकारी के प्रशिक्षित मध्यस्थ द्वारा दोनों पक्षकारों के बीच परस्पर वैवाहिक विवाद को सुलझाने का प्रयत्न

किया तथापि, मध्यस्थता के सभी प्रयास विफल हो गए । हमने प्रत्यर्थी के इस कथन के पश्चात् भी कि उसके द्वारा अपने पति के साथ वैवाहिक नातेदारी निभाना संभव नहीं है, विवाद न्यायालय के बाहर सुलझाने के लिए मामला दो अवसरों पर स्थगित किया, तथापि, पक्षकारों के बीच मामला नहीं सुलझ सका ।

12. निचले न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी-पत्नी और पिता द्वारा दिए गए साक्ष्य और इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि पक्षकार पिछले लगभग 12 वर्षों से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं, हमारा यह सुविचारित मत है कि प्रत्यर्थी-पत्नी को अपने पति से वैवाहिक नातेदारी बनाए रखने हेतु साथ रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता और इसके अतिरिक्त यह एक ऐसा मामला है जिसमें दोनों पक्षकारों की आयु को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए इसलिए यह उचित होगा कि उनके बीच वैवाहिक नातेदारी को समाप्त कर दिया जाए ।

13. हमारे समक्ष यह प्रश्न उद्भूत होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी को क्या निर्वाह-व्यय अनुज्ञात किया जाना चाहिए । यह स्वीकृत तथ्य है कि अर्जीदार-अपीलार्थी रांची में झारखंड अनुसूचित जनजाति विकास सोसायटी में लाभप्रद रूप से नियोजित है । यद्यपि यह स्वीकृत स्थिति है कि वर्ष 2013 में अपीलार्थी-पति को लगभग 14,000/- रुपए का सम्पूर्ण वेतन प्राप्त हो रहा था तथापि, प्रत्यर्थी-पत्नी के अनुसार अपीलार्थी-पति को वर्ष 2014 में कुल वेतन 19,080/- रुपए प्राप्त हो रहा था । वर्तमान में हम यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगा सकते हैं कि वेतन में सामान्य बढ़ोतरी को दृष्टिगत करते हुए अर्जीदार इस समय 20,000/- रुपए से अधिक वेतन प्राप्त कर रहा होगा । हमें यह भी सूचित किया गया है कि भरण-पोषण के एक पृथक् मामले में प्रत्यर्थी-पत्नी को 4,000/- रुपए प्रतिमास मंजूर किए गए हैं जिसे वर्तमान में अपीलार्थी-पत्नी द्वारा 2015 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 829 में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है और जिसमें 8 सितंबर, 2015 के अंतरिम आदेश द्वारा प्रत्यर्थी-पत्नी को मासिक भरण-पोषण के रूप 2,000/- रुपए प्रतिमास की धनराशि संदत्त की जा रही है ।

14. पूर्वतर अवसरों पर जब यह मामला पेश किया गया था तो उस समय पति को यह प्रस्थापना की गई थी कि वह प्रत्यर्थी-पत्नी को 10,00,000/- रुपए की जीवन निर्वाह-व्यय धनराशि एकमुश्त संदत्त करे जिसके लिए प्रत्यर्थी-पत्नी तैयार हो गई थी तथापि, अपीलार्थी-पति अपनी पत्नी को 6,00,000/- रुपए से अधिक का संदाय करने के लिए तैयार

नहीं हुआ था । हमारा यह सुविचारित मत है कि वर्तमान खर्चा सूचकांक को ध्यान में रखते हुए पति द्वारा प्रस्तावित धनराशि प्रत्यर्थी-पत्नी के लिए अत्यधिक अपर्याप्त होगी । वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह सुविचारित मत है कि 10,00,000/- रुपए की धनराशि ऐसी न्यूनतम धनराशि है जो अपीलार्थी-पत्नी को एक बार दी जाने वाली जीवन निर्वाहिका धनराशि हो सकती है ।

15. तथापि, अपीलार्थी-पति को दो विकल्प प्रस्तावित किए गए हैं जिनमें पहला विकल्प यह है कि वह प्रत्यर्थी-पत्नी को एकमुश्त स्थायी निर्वाहिका के रूप में 10,00,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करे जो अपीलार्थी-पति को प्रत्यर्थी-पत्नी के किसी मासिक भरण-पोषण का संदाय करने से भी विमुक्त करेगा । दूसरा विकल्प यह दिया गया है कि वह प्रत्यर्थी-पत्नी को निर्वाहिका के रूप में 5,00,000/- रुपए का संदाय करे और 5,000/- रुपए प्रतिमास मासिक भरण-पोषण के रूप में संदाय करे जो कि लगभग 20,000/- रुपए प्रतिमास के उसके वेतन का लगभग 25 प्रतिशत होगा । हमारा यह विचार है कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **डा. कुलभूषण कुंवर** बनाम **राजकुमारी और एक अन्य**[1] वाले मामले में अधिकथित विधि को जिसका उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने तारीख 19 अप्रैल, 2017 को दिए गए एक अन्य निर्णय अर्थात् **कल्याण डे चौधरी** बनाम **रीता डे चौधरी नी नंदी**[2] वाले मामले में अवलंब लिया गया है, दृष्टिगत करते हुए यह उचित और ठीक होगा कि प्रत्यर्थी-पत्नी को उक्त धनराशि अधिनिर्णीत की जाए ।

16. उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थी-चन्दरेश्वर प्रसाद और प्रत्यर्थी-पत्नी अंजलि कुमारी के बीच विवाह को एतद्द्वारा इस शर्त के अध्यधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया जाता है कि या तो अपीलार्थी-पति आज से 4 मास की अवधि के बीच एकमुश्त स्थायी निर्वाहिका के रूप में प्रत्यर्थी-पत्नी को 10,00,000/- रुपए की धनराशि संदत्त करे अथवा वह प्रत्यर्थी-पत्नी को निर्वाहिका के रूप में 5,00,000/- रुपए की धनराशि और प्रत्येक कलेण्डर मास की 10 तारीख तक मासिक भरण-पोषण के रुप में 5,000/- रुपए प्रतिमास की दर से धनराशि संदत्त करेगा । यदि अपीलार्थी दूसरे विकल्प को चुनता है तो वह आज से 4 मास

---

[1] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 234 = (1970) 3 एस. सी. सी. 129.

[2] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 2384.

की अवधि के भीतर 2015 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 829 में यह वचनबंध करते हुए समुचित आवेदन फाइल करेगा कि वह प्रत्यर्थी को मासिक भरण-पोषण के रूप में प्रतिमास 5,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करता रहेगा । विवाह-विच्छेद की डिक्री उस तारीख से प्रभावी मानी जाएगी जिस तारीख को या तो अपीलार्थी प्रत्यर्थी-पत्नी को स्थायी निर्वाहिका का संदाय करे या अपीलार्थी-पति द्वारा दूसरा विकल्प प्रयोग किए जाने के मामले में उस तारीख को प्रभावी होगी जिसको कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी-पत्नी को निर्वाहिका के रूप में 5,00,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करेगा और जिस तारीख को वह 2015 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 829 में यह वचनबंध फाइल करेगा कि वह प्रत्यर्थी-पत्नी को मासिक भरण-पोषण के रूप में प्रतिमास 5,000/- रुपए की धनराशि का संदाय किया करेगा ।

17. तद्नुसार यह अपील उपर्युक्त निबंधनों में स्वीकार की जाती है । तद्नुसार डिक्री बनाई जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 53 **मेघालय**

अमन राणा (श्री)

बनाम

मेघालय राज्य

तारीख 10 दिसम्बर, 2018

न्यायमूर्ति एस. आर. सेन

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 5, 6, 8, 10, 11 और 15(1) – संविधान के प्रारम्भ पर नागरिकता – राज्य द्वारा जन्मस्थान के आधार पर विभेद न किया जाना – भारत के संविधान के प्रारम्भ पर प्रत्येक नागरिक, जिसका भारत के राज्यक्षेत्र में अधिवास है या जो भारत के राज्यक्षेत्र में जन्म ले चुका था या जिसके माता या पिता में से एक भारत के राज्यक्षेत्र में जन्मा था या जो संविधान के ठीक पहले कम से कम 5 वर्ष तक भारत के राज्यक्षेत्र में मामूली तौर से निवासी रहा हो, भारत का नागरिक होगा ।

साथ ही ऐसे व्यक्ति जिन्होंने ऐसे राज्यक्षेत्र से, जो इस समय पाकिस्तान या बांग्लादेश के अन्तर्गत है, भारत के राज्यक्षेत्र को प्रव्रजन किया है, संविधान के प्रारम्भ पर भारत का नागरिक समझा जाएगा ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 5, 6, 8, 10, 11 और 15(1) – संविधान के प्रारम्भ पर नागरिकता – राज्य द्वारा जन्मस्थान के आधार पर विभेद न किया जाना – भारत में रहने वाले हिन्दुओं, सिखों, जैनियों, बौद्धों, ईसाइयों, खासियों, जैनतियों और गारो, चाहे वह किसी भी तारीख पर भारत में आए हों, को भारत का नागरिक घोषित किया जाना चाहिए और वे जिनको भविष्य में भारत में आना है, पर भी भारत के नागरिक के रूप में विचार किया जाना चाहिए – भारत सरकार द्वारा समस्त भारतीय नागरिकों के लिए एक समरूप विधि बनायी जानी चाहिए और समस्त भारतीयों को देश की विधि और संविधान का पालन करने के लिए बाध्य होना चाहिए – ऐसा कोई भी व्यक्ति जो भारतीय विधियों और संविधान का विरोध करता है, को देश का नागरिक नहीं माना जा सकता ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी उन कारणोंवश, जो केवल उन्हीं को ज्ञात हैं, के आधार पर नौकरी के उम्मीदवारों को अधिवास प्रमाणपत्र प्रदान करने से इनकार करने के द्वारा जानबूझकर परेशान कर रहे थे जिसके परिणामस्वरूप अनेक छात्रों का जीवन और उनकी आजीविका के अवसर नष्ट हो रहे थे । पूर्व में भी अनेक पीड़ितों ने अपनी शिकायतें इस माननीय न्यायालय के समक्ष अनेक रिट याचिकाओं के माध्यम से उठाईं और उनके मामले को अंतिम रूप से निपटाए जाने के प्रयोजनार्थ इस उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा 2016 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 203, रब्बे आलम बनाम मेघालय राज्य और अन्य वाले मामले में एक विस्तृत आदेश पारित किया गया जिसके अनुसार अधिवास प्रमाणपत्र जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ अनिवार्य अवधि पांच दिन है और प्रमाणपत्र एकमात्र पुलिस रिपोर्ट के आधार पर जारी किया जाता है जिसमें असफल होने पर माननीय न्यायालय के आदेश का अवमान माना जाएगा । इस मामले के याची ने भारतीय सेना में भर्ती के लिए आवेदन किया था और इसी प्रयोजनार्थ उसने प्रत्यर्थियों के कार्यालय में तारीख 18 जनवरी, 2018 को आनलाइन अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन किया था और यद्यपि अपेक्षित नहीं था, फिर भी याची ने समस्त दस्तावेज जैसे कि जन्म प्रमाणपत्र, माता-पिता के सम्पूर्ण विवरण, स्वयं के शैक्षणिक प्रमाणपत्र,

राशन कार्ड इत्यादि भी प्रस्तुत कर दिए थे । फिर भी प्रत्यर्थी संख्या 3 दस माह बीत जाने के बावजूद याची के मामले में सोता रहा और याची भिखारी की भांति सैंकड़ों बार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास दौड़ता रहा । इन सब बातों के बावजूद याची ने समस्त क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया और उसको भारतीय सेना में अंतिम रूप से नियुक्ति पत्र भी प्राप्त हो गया । व्यथित होकर याची ने 2018 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 415 इस माननीय न्यायालय के समक्ष फाइल की और इस माननीय न्यायालय ने तारीख 15 नवम्बर, 2018 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी को निर्देशित किया कि वे याची के मामले में पांच दिनों के भीतर नियमानुसार विचार करें । उक्त आदेश प्राप्त होने पर प्रत्यर्थी 10 माह से अधिक समय तक याची के मामले में सोते रहने के पश्चात् अचानक नींद से जागे और क्रोध से उत्तेजित होते हुए और माननीय न्यायालय के आदेश का मजाक उड़ाते हुए दो लाइन का गूढ़ भाषा में एक आदेश याची के निवास पर देर रात्रि यह सूचित करते हुए पहुंचा दिया कि अधिवास प्रमाणपत्र के लिए याची का आवेदन अस्वीकृत किया जा चुका है । अतः याची इस माननीय न्यायालय के समक्ष समुचित अनुतोष प्राप्त करने के लिए उपस्थित हुआ है । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यहां पर न्यायालय यह उल्लेख करता है कि विधियां लोगों के लिए बनायी जाती हैं न कि लोग विधियों के लिए और यह भी एक तथ्य है कि वर्तमान में विधि तभी प्रभावी हो सकती है जब इतिहास और आधारभूत वास्तविकताओं पर विचार किया जाए । इसलिए यह न्यायालय अपने प्रधानमंत्री, गृह मंत्री, विधि मंत्री और संसद् के माननीय सदस्यों से अनुरोध करता है कि वे एक ऐसी विधि अधिनियमित करें जो हिन्दुओं, सिखों, जैनियों, बौद्धों, पारसियों, ईसाइयों, खासियों, जैनतियों और गारो, जो पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से इस देश में शांतिपूर्वक रहने के लिए आए हैं, को पूरी गरिमा के साथ और इस प्रयोजनार्थ कोई निर्धारण वर्ष निर्धारित किए बिना रहने की इजाजत दी जाए और उनसे बिना कोई प्रश्न पूछे या बिना कोई दस्तावेज प्रस्तुत कराये, नागरिकता प्रदान की जाए । उनको यह अनुज्ञा प्रदान की जानी चाहिए कि वे भारत में किसी भी समय आ सकते हैं और सरकार उनका उचित रूप से पुनर्वास कर सकती है और उनको भारत का नागरिक घोषित कर सकती है । यही सिद्धांत उन हिन्दुओं और सिखों के बारे में भी अपनाया जाना चाहिए जो भारतीय मूल के हैं और वर्तमान में विदेश में रह रहे हैं कि वे किसी भी

समय भारत में आ सकते हैं और उनको अविवेचित रूप से भारत का नागरिक माना जाएगा । न्यायालय यह प्रत्याशा करती है कि भारत सरकार निर्दोष हिन्दुओं, सिखों, जैनियों, बौद्धों, ईसाइयों, खासियों, जैनतियों और गारो, जो पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से आए हैं और जिनको अभी भी विदेशों से आना है, को संरक्षण प्रदान करने के प्रयोजनार्थ बोधगम्य निर्णय लेगी चूंकि उनको भारत में नागरिक के रूप में आने का अधिकार है । यद्यपि सीमा-रेखा आयोग को विभाजन के समय नियुक्त किया गया था, किन्तु सीमा-रेखा आयोग ने उचित प्रकार से कार्य नहीं किया और भारत को दो भागों में विभाजित करने के प्रयोजनार्थ एक काल्पनिक सीमा-रेखा खींच दी । इसका एक ज्वलंत उदाहरण यह है कि यदि हम सीमा पर जाएं, तो यह समझ पाना कठिन हो जाता है कि कौन सी भूमि भारत में आती है और कौन सी बांग्लादेश में क्योंकि किसी की रसोई तो भारत में है और उसका शयनकक्ष बांग्लादेश में । भारत नेपाल संधि पर भी विचार किया जाना चाहिए । इसलिए, न्यायालय मात्र यह कह सकता है कि भारत में रहने वाले हिन्दुओं, सिखों, जैनियों, बौद्धों, ईसाइयों, खासियों, जैनतियों और गारो, चाहे वह किसी भी तारीख पर भारत में आए हों, को भारत का नागरिक घोषित किया जाना चाहिए और वे जिनको भविष्य में भारत आना है, पर भी भारत के नागरिक के रूप में विचार किया जाना चाहिए । तथापि, न्यायालय मुस्लिम भाइयों और बहनों के विरुद्ध नहीं है, जो सदियों से भारत में रह रहे हैं और भारतीय विधियों का पालन कर रहे हैं, उनको भी शांतिपूर्वक रहने दिया जाना चाहिए । न्यायालय भारत सरकार से यह अनुरोध भी करता है कि समस्त भारतीय नागरिकों के लिए एक समरूप विधि बनायी जानी चाहिए और समस्त भारतीयों को देश की विधि और संविधान का पालन करने के लिए बाध्य होना चाहिए । ऐसा कोई भी व्यक्ति, जो भारतीय विधियों और संविधान का विरोध करता है, को देश का नागरिक नहीं माना जा सकता । न्यायालय को स्मरण रखना चाहिए कि सर्वप्रथम हम भारतीय हैं, तत्पश्चात् अच्छे मनुष्य हैं और तत्पश्चात् उस समुदाय के हैं जिससे हम संबंधित हैं । न्यायालय आशा करता है कि भारत सरकार इन वंचित लोगों, जिनके बारे में ऊपर चर्चा की गई है और जिनको अपनी भूमि, संपत्तियों इत्यादि को छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा, के हितों के संरक्षण के लिए मानवता के आधार पर निर्णय लेगी । अनेक अधिवक्ताओं ने यह भी कहा है कि असम के अभिरक्षा शिविर, जहां लोगों

को विदेशी के रूप में चिन्हांकित करके रखा गया है, हथकड़ियों में जकड़े हुए हैं और अमानवीय स्थितियों में जीवनयापन कर रहे हैं । भारत ने स्वाधीनता रक्तपात के पश्चात् प्राप्त की थी और इस रक्तपात के घोरतम भुक्तभोगी हिन्दु और सिख थे, जिनको अपने पूर्वजों की संपत्ति और जन्मस्थान को आंसू बहाते हुए और भयवश छोड़ना पड़ा और जिसको वह कभी भूल नहीं सकेंगे । तथापि, न्यायालय यह उल्लेख करके कोई गलत कार्य नहीं कर रहा कि जब सिख भारत आए, तो सरकार ने उनका पुनर्वास किया किन्तु हिन्दुओं के साथ ऐसा बर्ताव नहीं किया गया । इसलिए, यह कहना सही नहीं है कि भारत को स्वाधीनता अहिंसा के द्वारा प्राप्त हुई बल्कि यह स्वाधीनता वास्तव में हिंसा के द्वारा प्राप्त हुई जिसमें लाखों की संख्या में हिन्दुओं और सिखों ने अपने जीवन, संपत्ति, भूमि और जीवनयापन के साधनों का बलिदान दिया । पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के मध्य सीमा-रेखा का विनिर्धारण और साथ ही जनमत संग्रह पूर्णतया दूषित थे और हमारे नेता आने वाली पीढ़ियों और देश के हित को विचार में रखे बिना स्वाधीनता प्राप्ति के प्रयोजनार्थ अत्यधिक जल्दी में थे, इसीलिए आज की समस्त समस्याएं उत्पन्न हुईं हैं । न्यायालय बराक घाटी और साथ ही असम घाटी के समस्त हिन्दुओं से अपील करता हूं कि वे एक साथ बैठकर शांतिपूर्ण हल खोंजे क्योंकि हमारी संस्कृति, रूढ़ियां और धर्म एक हैं । हमको मात्र भाषा के आधार पर एक दूसरे से घृणा नहीं करनी चाहिए । इसके अतिरिक्त, न्यायालय यह उल्लेख भी करता है कि उसके विचार में वर्तमान राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर प्रक्रिया त्रुटिपूर्ण हैं चूंकि अनेक विदेशी भारतीय बन गए हैं और मूल भारतीय छूट गए हैं जो कि अत्यधिक दुखद है । न्यायालय इस बात को स्पष्ट करता है कि किसी को भी भारत को एक अन्य इस्लामी देश बनाने का प्रयास नहीं करना चाहिए, अन्यथा यह भारत और विश्व के लिए सर्वनाश का दिन होगा । न्यायालय को पूर्ण विश्वास है कि केवल नरेन्द्र मोदी के अधीन चलने वाली सरकार मामले की घोरता को समझेगी और आवश्यक कार्यवाही करेगी जैसा कि ऊपर कहा गया है और हमारी मुख्यमंत्री ममता जी राष्ट्रहित में इस संबंध में सहयोग करेंगीं । (पैरा 5)

उक्त अधिसूचना के पैरा 2 और 3 का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति के बारे में व्यक्तिगत निवास प्रमाणपत्र जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ यह उपधारणा की जा सकती है कि वह स्थायी निवासी

है यदि वह या तो अपने स्वयं के घर में या किराए के घर में कम से कम 12 वर्ष की अवधि से निरन्तर रूप से निवास कर रहा है और उसने स्थायी रूप से निवास करने का निर्णय ले लिया है । उक्त अधिसूचना जिसकी संख्या पी. ओ. एल. 422/76/55, तारीख शिलांग 13 जनवरी, 1995 और अधिसूचना संख्या पी. ओ. एल. 97/74/174, तारीख शिलांग 10 जून (वर्ष स्पष्ट नहीं) का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों ही अधिसूचनाएं एक दूसरे के खंडन में हैं और माननीय उच्चतम न्यायालय और साथ ही इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में जारी किए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों के सामंजस्य में नहीं है । इस मामले के पैरा 6 और 7 में उस प्रक्रिया को अधिकथित किया गया है जिसका पालन अधिवास प्रमाणपत्र प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और साथ ही इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय, जिसको ऊपर उद्धृत किया गया है, के विश्लेषण के पश्चात् न्यायालय की सुविचारित राय यह है कि मेघालय राज्य में स्थायी रूप से निवास करने वाला या कम से कम 5 वर्ष निवास करने वाले किसी व्यक्ति को अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन करने का अधिकार है और उसका अधिवास प्रमाणपत्र इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के पैरा 6 और 7 में की गई मताभिव्यक्ति के अनुसार जारी किया जाएगा । तथापि, ऐसे व्यक्ति के मामले में छूट प्रदान की जाएगी जो राज्य में स्थानांतरण पर सेवाएं प्रदान करने के लिए आता है । इस मामले में 5 वर्षों की अवधि पर विचार नहीं किया जाएगा और वह व्यक्ति 5 वर्ष की अवधि के पहले भी अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन प्रस्तुत कर सकता है । न्यायालय स्थायी निवास प्रमाणपत्र के मामले में यह स्पष्ट करता है कि मेघालय राज्य में कम से कम विगत 12 वर्ष की अवधि से स्थायी रूप से निवास करने वाला व्यक्ति, जिसका आशय यहां पर स्थायी रूप से निवास करने का है, को बिना कोई प्रश्न पूछे स्थायी निवास प्रमाणपत्र प्रदान किया जाना चाहिए । फिर भी यदि कोई संदेह उत्पन्न होता है तो उपायुक्त यह विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि वह इस राज्य में कितनी अवधि से रह रहा है, पुलिस सत्यापन के लिए कह सकता है और स्थायी निवास प्रमाणपत्र केवल शैक्षिक प्रयोजनों के लिए जारी किया जा सकता है किन्तु ऐसा स्थायी निवास प्रमाणपत्र समस्त प्रयोजनों के लिए लागू होगा । न्यायालय इस बात को स्पष्ट करता है कि अधिवास प्रमाणपत्र या स्थायी निवास प्रमाणपत्र का उद्देश्य केवल सेना में सम्मिलित होने या पैरा मिलेट्री बलों या शैक्षिक

प्रयोजनों के लिए नहीं है बल्कि यह समस्त प्रयोजनों के लिए प्रदान किया जाता है । सरकार द्वारा प्रतिरक्षा में फाइल किए गए शपथपत्र के पैरा 8 के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि यह शपथपत्र भ्रमपूर्ण है और परस्पर विरोधी है चूंकि सरकार ऐसा अधिवास प्रमाणपत्र, जो विधि की दृष्टि में मान्य ठहराए जाने योग्य न हो, को जारी किए जाने के पक्ष में नहीं है । उन कारणों जिनपर ऊपर चर्चा की गई है न्यायालय अधिसूचना संख्या पी. ओ. एल. 422/76/55, तारीख शिलांग 13 जनवरी, 1995 और अधिसूचना संख्या पी. ओ. एल. 97/74/174, तारीख शिलांग 10 जून (वर्ष स्पष्ट नहीं) से सहमत नहीं हूं जिनको एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और मेघालय सरकार को निर्देशित किया जाता है कि वे अधिवास प्रमाणपत्र और व्यक्तिगत निवास प्रमाणपत्र के संबंध में रब्बे आलम बनाम मेघालय राज्य और अन्य वाले मामले के पैरा 6 और 7 में इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों का अनुसरण करें । (पैरा 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] (2017) 1 एम. जे. 128 :
रब्बे आलम बनाम **मेघालय राज्य और अन्य ;** 11

[2013] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2678 :
सोन्दुर गोपाल बनाम **सोन्दुर रजनी ;** 10

[2005] (2005) 5 एस. सी. सी. 656 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2920 :
सर्वानंद सोनोवाल बनाम **भारत संघ और एक अन्य** । 5

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2018 की रिट याचिका (सिविल) सं. 448.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री आर. गुरुंग

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री ए. कुमार (महाधिवक्ता), प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की ओर से (सुश्री) आर. कोलनी (शासकीय अधिवक्ता) और प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 की ओर से (सुश्री) ए. पाल (अपर महासालिसिटर)

न्यायमूर्ति एस. आर. सेन – याची की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री आर. गुरुंग और प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की ओर से विद्वान् शासकीय अधिवक्ता सुश्री आर. कोलनी और प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 की ओर से विद्वान् अपर महासालिसिटर (सुश्री) ए. पाल को सुना ।

2. हमारे समक्ष उपस्थित विवाद्यक यह है कि याची को निवास-स्थान प्रमाणपत्र प्रदान किए जाने से इनकार कर दिया गया है । मैं उन कठिनाइयों को महसूस कर सकता हूं, जिनका सामना निवास स्थान प्रमाणपत्र प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ निवासियों द्वारा किया जाता है और आज स्थायी निवास प्रमाणपत्र एक बड़ा विवाद्यक बन चुका है जिसका परीक्षण भारतवर्ष के जन्म के प्रारम्भ से ही किया जाना चाहिए । इसलिए मेरा मत है कि यदि मैं मूल भारत और उसके विभाजन के बारे में चर्चा करूं, तो मैं अपने कर्तव्य में विफल हो जाऊंगा ।

3. जैसा कि हम सभी जानते हैं, भारत विश्व में सबसे बड़े देशों में से एक था और तब पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान की कोई संकल्पना नहीं थी । वे सभी एक ही देश के भाग थे और उन सभी का शासन हिन्दू साम्राज्य द्वारा किया जाता था किन्तु तत्पश्चात् भारत में मुगल आए और उन्होंने भारत के विभिन्न भागों पर कब्जा कर लिया और देश पर शासन करने लगे और उसी समय बिन्दु पर बलपूर्वक बहुत से धर्मांतरण भी हुए । तत्पश्चात् भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के नाम से अंग्रेज आए और उन्होंने भारत पर शासन करना आरम्भ कर दिया और उन्होंने भारतीयों को यातनाएं भी दीं जिस कारणवश अंततः स्वाधीनता आन्दोलन आरम्भ हुआ और वर्ष 1947 में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई और भारत दो देशों में विभाजित हो गया; एक भाग पाकिस्तान और दूसरा भाग भारत बना । यह निर्विवाद है कि विभाजन के समय लाखों-लाखों की संख्या सिखों और हिन्दुओं को मारा गया, उनको यातनाएं दी गईं और उनके साथ बलात्संग भी हुए और उनको अपनी पूर्वजों की संपत्ति को छोड़ने के लिए और अपने प्राणों और गरिमा की रक्षा के लिए भारत में प्रवेश करने के लिए विवश होना पड़ा ।

4. पाकिस्तान ने स्वयं को इस्लामिक राष्ट्र घोषित किया और चूंकि देश का विभाजन धर्म के आधार पर हुआ था, भारत को भी स्वयं को हिन्दू राष्ट्र घोषित करना चाहिए था, किन्तु यह देश धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बना रहा । आज भी पाकिस्तान, बंग्लादेश और अफगानिस्तान में हिन्दू, सिख, जैन, बौद्ध, पारसी, खासी, जैनतिया और गारो लोगों का उत्पीड़न किया जाता है

और उनके पास संसार में कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जहां वे जा सके और वे हिन्दू जो विभाजन के दौरान भारत में प्रवेश कर गए थे, को आज भी विदेशी माना जाता है जो मेरी समझ के अनुसार अत्यधिक अतार्किक और अवैध है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध है । मैंने मेघालय के वर्तमान राज्यपाल श्री तथागत राय द्वारा लिखित पुस्तक "माई पीपुल अपरुटिड : द एक्ससोडस आफ हिन्दूज फ्राम ईस्ट पाकिस्तान एण्ड बांग्लादेश" को पढ़ा है । मैंने सेन्ट एडमन्डस कालेज के प्रोफेसर डा. दिलीप लहिरी, जो वर्तमान में सेवानिवृत्त हो चुके हैं, द्वारा लिखित पुस्तक "निर्बासित श्री भूमि, भाग II और सन्दोरी श्री भूमि श्रीहोतो, भाग I" और अन्य संबंधित सामग्री को भी पढ़ा है । इन पुस्तकों को पढ़ने के पश्चात् मुझे वास्तव में पीड़ा और वेदना हुई और इसलिए, मैं महसूस करता हूं कि मैं अपने कर्तव्य के निर्वहन में असफल हो जाऊंगा यदि जनसामान्य और भारत सरकार के संज्ञान में इन बातों को नहीं लाया गया । ऊपरनिर्दिष्ट पुस्तकों के सार को यहां पर नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :–

> "स्वतंत्रता का मूल्य आन्तरिक सतर्कता होती है । सांस्कृतिक, नस्लीय और भाषायी रूप से, असाम में प्रत्येक गैर-असामी विदेशी है । इस संबंध में हमको इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि अत्यंत प्राचीन काल में असम भारत का भाग कभी नहीं था । (लाहिरी, संदोरी, तुमी श्रीहोतो, भाग I पेज 373) ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

भारी स्तर पर त्रास्दी : असम के सिलहट जिला के बंगाली हिन्दुओं की त्रासदी - इस जिलों जहां अप्राकृतिक रूप से जनमत संग्रह कराया गया था और जिसके अनुसार अधिकांश जिलों ने पूर्वी पाकिस्तान को चुना, सिवाय रत्नावड़ी, पठारकन्डी, बदरपुर के तीन थानों और करीमगंज के कुछ भाग के । लोगों के इस वर्ग (जिन्होंने पाकिस्तान को नहीं चुना था) पर अत्याचार किए गए जिसके कारण उनको पूर्वी पाकिस्तान से भागने के लिए विवश होना पड़ा और यह सच्चाई है कि उनकी व्यथा विभाजन के बहात्तर वर्षों के पश्चात् भी असंबोधित बनी रही जो कि इतिहास का अत्यधिक पक्षपातपूर्ण भाग है । ..... तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दुओं के विरुद्ध अत्याचार राज्य द्वारा प्रकट या अप्रकट रूप से प्रायोजित होने लगे और धीरे-धीरे एक अन्य सामूहिक नरसंहार का रूप ले लिया ।" (राय द्वारा लिखित माई पीपुल अपरुटेड, पृष्ठ 40) । 1971 में बांग्लादेश की

स्वाधीनता के पश्चात् भी अप्रकट रूप से अत्याचार जारी रहे और 1992 में बाबरी मस्जिद के बिध्वंस के पश्चात् पुनः हिन्दुओं के विरुद्ध अकथनीय रूप से भय का वातावरण सृजित किया गया । वर्ष 2001-2002 में एक विशेष मामला घटित हुआ जब 1950 के पूर्वी पाकिस्तान वाले कालखंड वाला राज्य प्रायोजित कार्यक्रम दोहराया गया । बांग्लादेश में आज भी मानवाधिकारों का अतिक्रमण जारी है ।

यह दमन और जानबूझकर वंचित किए जाने की लम्बी गाथा है ।

नाजियों द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध और उसके पश्चात्वर्ती वर्षों के दौरान यहूदियों का नरसंहार या यहूदियों की सामुहिक रूप से हत्या सम्पूर्ण संसार को ज्ञात है । इस विषय पर अनुसंधान हुए है और अनन्य रूप से दस्तावेज लिखे गए हैं और गहनतापूर्वक पुस्तकें लिखी गई हैं और स्किनडलर्स लिस्ट मेड नामक चलचित्र का निर्माण भी हुआ है । पूर्वी यूरोप में यहूदियों का उत्पीड़न, जिसके पहले नाजियों की विभीशिका घटित हो चुकी थी और जिसने अंग्रेजी भाषा के शब्द कार्यक्रम और साथ ही उमांस के डूफास एफेयर जैसे विपथगमन (एक घटना जिसने फ्रांस को 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के आरम्भ में झकझोर कर रख दिया था, जिसमें अल्फ्रेड ड्रेफर नामक एक यहूदी तोपखाना कैप्टन अन्तर्वलित था जिसको गुप्त फौजी सूचनाएं जर्मनी को पहुंचाने के लिए असत्य रूप से दोषसिद्ध ठहराया गया था) जो सम्पूर्ण सभ्य संसार में सुविख्यात है, में अंशदान दिया । तुर्की स्थित ओत्तोमन साम्राज्य की युवा तुर्क सरकार ने 1915-16 में आरमीनिया के ईसाईयों का नरसंहार किया था । सम्पूर्ण संसार में आज भी आरमीनिया के लोग प्रत्येक वर्ष 24 अप्रैल को इस भीषण त्रासदी को याद करते हैं । दक्षिणी संयुक्त राष्ट्र में अफ्रीकन-अमेरिकनों को सिविल अधिकारों से वंचित किए जाने और उनको दासता का अनुसरण करने के लिए विवश किए जाने की सर्वथा निन्दा की गई है और उस पर रोक लगाई गई है ..... एलेक्स हैले द्वारा लिखित 'रुट्स' अमेरिका में दासता के अनुभवों के बारे में सम्पूर्ण विश्व को सूचित करती है ।

जातीय समूहों के मानवाधिकारों के उल्लंघनों और राज्य प्रायोजित अत्याचारों के विरुद्ध अनेक नेताओं द्वारा संघर्ष किया गया जिनको नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया । मार्टिन लूथर किंग, जूनियर एल्बर्ट लूथुली, विशप डेसमंड ट्यूटो और नेल्सन मंडेला, वोरिस पास्टरनेक, एल्कजेंडर शोझेनिस्टीन, एंड्री सखारोव और लीच वाल्सिया और आंग सांन

सू की ।

मेघालय के राज्यपाल तथागत रे, जो कि एक विख्यात लेखक हैं, ने अपनी पुस्तक "माई पीपुल अपरुटिड : द एक्ससोडस आफ हिन्दूज फ्राम ईस्ट पाकिस्तान एण्ड बांग्लादेश" में दलील दी गई है कि जबकि इन समस्त अन्यायों को उजागर किया गया है, उन पर अनुसंधान किया गया है और उनपर अन्यायों का सामना करने वालों के वंशजों ने दस्तावेज लिखे गए हैं और उनको सम्पूर्ण विश्व के संज्ञान में लाया गया है, पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दुओं का बड़ी संख्या में पलायन सम्पूर्ण विश्व को अज्ञात बना रहा और संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग के अभिलेखों के अनुसार भी इस घटना को एक बड़े शरणार्थी घटनाक्रम के रूप में सूचित नहीं किया गया ।

फिर भी यह संसार में मानव अधिकार अतिक्रमण का एक बड़ा मामला था । पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दुओं पर राज्य प्रायोजित अत्याचार और तत्पश्चात् इस घटना को जानबूझकर छिपाया जाना और संसार के इतिहास से इस हिंसक त्रासदी को लगभग मिटा दिए जाने पर अविलम्ब विचार किए जाने की आवश्यकता है । सत्य को उजागर किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि पड़ोसी राज्य असम में "विदेशी" विवाद्यक का नवीनतम परिदृश्य में दोहराया जा रहा है जहां हिन्दू बंगालियों को दुखद घटनाओं के फलस्वरूप निशाना बनाया जा रहा है, ।

विभाजन के पश्चात् पूर्वी पाकिस्तान से और 1971 के पश्चात् बांग्लादेश से हिन्दू बंगालियों का बड़ी संख्या में पलायन, जिनको जबरन बेदखल किया गया और बेघर कर दिया गया और जिन्होंने अंग्रेजों के नीतिगत विनिश्चयों के कारणवश और सीमा-रेखा के दोनों तरफ लोगों के भाषायी और धार्मिक प्रतिशोधों के कारण बारम्बार सहन किया । प्रश्नगत व्यक्ति जिनमें से अधिकांश को भारत में अवैध आप्रवासी या विदेशी कहा जाता है, वहीं व्यक्ति हैं जो अविभाजित भारत के भाग थे । विभाजन अंग्रेजों की सांप्रदायिकता की आग को निरन्तर रूप से जलाए रखने के प्रयोजनार्थ सर्वाधिक घिनौनी चाल थी । उनकी इस सांप्रदायिकता की आग का लाभ उनको भारत के पूर्वी और पश्चिमी, दोनों किनारों पर मिला । भारत के जिन दो राज्यों ने सांप्रदायिकता की इस आग को सर्वाधिक बर्दाश्त किया, वे हैं - पंजाब और बंगाल । किन्तु जबकि पंजाब में पलायन सीमा-रेखा के दोनों तरफ था और पश्चिमी पाकिस्तान से आए हुए

शरणार्थियों का पुनर्वास किया गया, बंगाली हिन्दू निरन्तर रूप से अशांति की स्थिति का सामना करते रहे । जबकि पश्चिमी पंजाब और पश्चिमी पाकिस्तान के अन्य प्रांतों से सीमा पार करके 5,50,000 गैर-मुस्लिमों को लाया गया, इसी अवधि के दौरान लगभग 12,50,000 गैर-मुस्लिम पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पार करके पश्चिमी बंगाल आए (राय, पृष्ठ 169) ।

पूर्वी पाकिस्तान द्वारा वर्ष 1950 में बंगाली हिन्दुओं से जातीय आधार पर किया गया घृणित परिमार्जन दोषपूर्ण और अत्यधिक विवादास्पद सिलहट जनमत संग्रह का परिणाम था । इस जनमत संग्रह के कारण इतिहास के पृष्ठ निर्दोष बंगाली हिन्दुओं के रक्त से लाल हो गए और तत्पश्चात् उनका भविष्य सदैव के लिए अन्धकारमय हो गया । उनको उनके घरों से जबरन बेदखल किया गया और उनके देश (जो अब दुश्मन देश है) से भागने पर विवश किया गया और उनको जबरन धर्मांतरण, धार्मिक अत्याचार, लूटमार, हत्या और अंग-भंग, आगजनी और बलात्संग और उनकी संपत्तियों पर जबरन कब्जे का सामना करना पड़ा । जैसा कि तथागत राय ने अपनी पुस्तक माई पीपुल अपरुटिड : द एक्ससोडस आफ हिन्दूज फ्राम ईस्ट पाकिस्तान एण्ड बांग्लादेश में लिखा है :–

दो सर्वाधिक वीभत्स हत्याओं के परिदृश्य थे मुलादी और मधवपाशा गांव ..... जो सैकड़ों हिन्दुओं के घर थे, जब उनके घरों में आग लगाई गई, तो वे शरण लेने के लिए पुलिस थाना में जमा हो गए । उनपर पुलिस थाना की चारदीवारी के भीतर ही हमला किया गया और उनकी हत्या कर दी गई ..... मधवपाशा गांव में बाबूगंज पुलिस थाना के अन्तर्गत दो से तीन सौ हिन्दुओं को खून की प्यासी मुस्लिम भीड़ ने घेर लिया, उनको एक पंक्ति में खड़ा किया गया और उनके सरों को रमदा से काट दिया गया ..... (राय, माई पीपुल अपरुटिड, पृष्ठ 218) ।

मुस्लिम पुरुष दौड़-दौड़ कर सीमा के निकट रहने वाले ग्रामीणों, जो भारत में आने का प्रयास कर रहे थे, से लूटमार करते रहे ।

पूर्वी पाकिस्तान के सिविल सुरक्षाकर्मी, जिनको अंसार कहा जाता था, पूर्णतया असूचित बने रहे और उन्होंने लूटमार और महिलाओं की छीनाझपटी में भाग लिया । (राय, माई पीपुल अपरुटिड, पृष्ठ 221) ।

1971 के पश्चात् प्रथम बार वह अवधि आई जब हिन्दुओं पर अत्याचारों के इतिहास को लेखबद्ध किया गया । ढाका विश्वविद्यालय में सामूहिक हत्याओं के विवरण के वृतान्त को ढाका विश्वविद्यालय गड़ोहत्या

: 1971, जगन्नाथ हाल नामक पुस्तक में लेखबद्ध किया गया । बांग्लादेश की मुक्ति के युद्ध के दौरान पाकिस्तानी सेना ने भी हिन्दुओं को ही निशाना बनाया । 8, बलूच के कमान अधिकारी लेफ्टिनेंट कर्नल अजीज अहमद खान ने हमीदुर रहमान आयोग के समक्ष अपने शपथपूर्वक कथन में कहा है, "जनरल नियाजी ने पूछा था कि कितने हिन्दुओं की हत्या की गई है । माह मई में हिन्दुओं की हत्या का आदेश लिखित में पारित किया गया था । यह आदेश 23वीं बिग्रेड के बिग्रेडियर अब्दुल्लाह मलिक द्वारा पारित किया गया था ।"

गैरी जे बास द्वारा लिखित प्रारम्भिक पुस्तक **दि ब्लड टेलीग्राम : इंडियाज सीक्रेट वार इन ईस्ट पाकिस्तान** के प्रकाशन से इस नृशंस मानव वध के अनेक अज्ञात पहलुओं को प्रकट करने में सहायता प्राप्त हुई है ।

सिलहट जनमत संग्रह

सिलहट जनमत संग्रह के मामले में जेम्स मेडिसन की दलील उपयुक्त प्रतीत होती है । उन्होने जनमत संग्रह को "बहुसंख्यकों की तानाशाही" के रूप में परिभाषित किया है ।

निर्बासित श्री भूमि, भाग II नामक पुस्तक में डा. दिलीप लाहिरी ने जनमत संग्रह शीर्षक वाले भाग में सिलहट में जनमत संग्रह की विधिमान्यता पर प्रश्नचिह्न लगाया । उन्होंने एक फाइल, जिसमें तत्कालीन वायसराय, गवर्नर जनरल, पंडित जवाहर लाल नेहरू, लियाकत अली खान और प्रशासन में बैठे हुए अनेक अधिकारियों के मध्य पत्रों का आदान-प्रदान समाविष्ट था और जिसको असम सरकार द्वारा नष्ट कर दिया गया और जिसको नवीनतम रूप से लंदन स्थित म्यूजियम के पुरात्तविक वर्ग से अभिप्राप्त किया गया, में दुलर्भ पुरातात्विक स्रोत का उपयोग करते हुए सिलहट जनमत संग्रह के बारे में कुछ प्रश्नों को उठाया गया है :–

> (1) वायसराय ने 8 जून के कथन में अधिकथित शर्तों के उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रांत की भांति सिलहट में जनमत संग्रह गवर्नर जनरल के तत्वाधान में कराया जाएगा और भारतीय सेना के ब्रिटिश अधिकारी जनमत संग्रह की कार्यवाहियों का पर्यवेक्षण करेंगे, को पूरा नहीं किया है । सिलहट में ऐसे किसी भी सेनाधिकारी को नियुक्त नहीं किया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बजाय मामले को प्रांतीय सरकार के जिम्मे छोड़ दिया गया जिसका अर्थ है जनमत संग्रह में हितबद्ध कांग्रेस मंत्रिमंडल और गवर्नर जो मुस्लिम लीग के

लिए अपने विचारों और कांग्रेस को अनुकूल बनाने के लिए उसकी उत्सुकता के लिए कुख्यात था ।

लार्ड माउंटबेटन ने कहा कि परिणामों को पहले ही लंदन भेजा जा चुका है और नेहरू के अनुरोध के उत्तर में तुरन्त जांच के लिए समाचार जारी किए जाने की अनुज्ञा दी जा चुकी है ।

(2) परिणामों की घोषणा जल्दबाजी में की गई थी । असम के गवर्नर ने तारीख 12 जुलाई, 1947 के एक टेलीग्राफ संदेश में जनमत संग्रह का परिणाम "सिलहट जनमत संग्रह परिणाम" के रूप में भेजा था । पूर्वी बंगाल के विधिमान्य मतदाता 2,79,619 । असम के शेष मतदाता 1,64,041 । बहुसंख्यक मतदाता 56,578 । मतदान के लिए हकदार कुल मतदाताओं का विधिमान्य प्रतिशत 77.33 । परिणामों की घोषणा तारीख 14 जुलाई को प्रातःकाल किए जाने के लिए अनुरोध किया गया । बोरदोली, प्रधानमंत्री जो वर्तमान में दिल्ली में हैं, को अग्रिम में आपकी घोषणा के लिए सूचना दी जा सकती है ।

(3) जनमत संग्रह स्वतंत्र और निष्पक्ष नहीं था और रविन्द्र नाथ चौधरी ने भारत के वायसराय महामहिम लार्ड लुईस माउंटबेटन को भेजे गए अपने टेलीग्राम में कहा, "सिलहट के हिन्दुओं से अप्रमाणिक जनमत संग्रह के परिणामों से बाध्य होने की अपेक्षा पूर्ण निष्पक्षता के साथ नहीं की जा सकती" (लाहिरी, निर्बाशिता श्रीभूमि, भाग II, पृष्ठ 162) । जनमत संग्रह "जो मुस्लिम लीग की हिंसा और बाहरी लोगों के मध्यक्षेप द्वारा बाधित न हो" पुनः कराए जाने की मांग की गई । उन्होंने आगे कहा, "सेना के व्यापक इंतजाम किए जाएं ताकि किसी दूरस्थ ग्राम के एक भी मतदाता को मतदान केन्द्र जाने से रोका न जा सके । जब उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रांत में जनमत संग्रह के प्रयोजनार्थ 17 हजार सैनिक तैनात किए जा सकते हैं तो सिलहट जिला के लिए भी वैसे ही इंतजाम क्यों नहीं किए जा सकते जहां 32,00,000 लाख लोग रहते हैं और जिसका क्षेत्रफल 6,000 वर्गमील है ?" (लाहिरी, एन. एस. पृष्ठ 162) जो कुछ भी हुआ वह सिलहट के बंगाली हिन्दुओं के साथ पूर्ण अन्याय था और इसको तभी दुरस्त किया जा सकता है जब नया जनमत संग्रह कराया जाए ।

उक्त पत्र को नीचे प्रत्युत्तपादित किया गया है –

"रबिन्द्र नाथ चौधरी पी.एस.एस.सी.आई.टी., सोबा बाजार

बी. ए. बी. एल.
फोन : 8.8.63374

पोस्ट बाक्स 12211.
कलकत्ता - 5
17 जुलाई, 1947

संदर्भ

सेवा में,

महामहिम,
लार्ड लुईस माउंटबेटन
वायसराय आफ इंडिया,
नई दिल्ली

महोदय,

मैं इस बात की पुष्टि करता हूं कि मैंने आपको इस माह की 15 तारीख को एक टेलीग्राम भेजा था, जिसकी प्रति इस पत्र के साथ संलग्न की जा रही है । सिलहट जनमत संग्रह मुस्लिम लीग द्वारा की गई हिंसा और घोर अनियमितताओं के कारण दूषित हो गया है जो इतनी अधिक हैं कि उनको यहां पर सूचीबद्ध नहीं किया जा सकता, किन्तु मैं यह समझता हूं कि आपको यह मामला अन्य स्रोतों से भी निर्दिष्ट किया गया है । जिस तथ्य पर विचार किया जाना शेष है, वह यह है कि वायसराय द्वारा दिए गए आश्वासन का पालन नहीं किया गया और इस त्रुटि का क्या कारण है, मैं नहीं जानता । यह स्वतंत्र और निष्पक्ष जनमत संग्रह नहीं है । इन परिस्थितियों के अन्तर्गत वायसराय की गरिमा को ध्यान में रखते हुए यह अपेक्षित है कि वे आदर्श परिस्थितियों के अन्तर्गत स्वतंत्र और निष्पक्ष जनमत संग्रह का इंतजाम कराएं । सिलहट के हिन्दुओं से अप्रामाणिक जनमत संग्रह के परिणामों से बाध्य होने की अपेक्षा पूर्ण निष्पक्षता के साथ नहीं की जा सकती । इसलिए, कृपया अन्य जनमत संग्रह आयोजित कराए जाने के लिए तुरन्त कार्यवाही करें, जो मुस्लिम लीग की हिंसा और बाहरी लोगों के मध्यक्षेप द्वारा बाधित न हो । पुनः जनमत संग्रह कराया जाना चाहिए जो केवल सिलहट जिला के लोगों से संबद्ध हो और बाहर के किसी भी व्यक्ति को इस विवाद्यक को जटिल बनाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जानी चाहिए ।

सेना के व्यापक इंतजाम किए जाएं ताकि किसी दूरस्थ ग्राम का एक भी मतदाता मतदान केन्द्र में जाने से रोका न जा सके । जब

उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रांत में जनमत संग्रह के प्रयोजनार्थ 17 हजार सैनिक तैनात किए जा सकते हैं तो सिलहट जिला के लिए भी वैसे ही इंतजाम क्यों नहीं किए जा सकते जहां 32,00,000 लाख लोग रहते हैं और जिसका क्षेत्रफल 6,000 वर्गमील है ?

सिलहट के नागरिकों और विशेष रूप से हिन्दुओं के साथ किए गए इस अन्याय का परिमार्जन नया जनमत संग्रह कराए जाने के द्वारा किया जाना चाहिए । कृपया तद्नुसार, कार्यवाही करें ।

सदैव आपका

महामहिम का सर्वाधिक आज्ञाकारी सेवक

ह. /-

संलग्नक : एक प्रति टेलीग्राम

अमृता बाजार पत्रिका ने अपने तारीख 7 जुलाई, 1947 के समाचारपत्र के अंक, जिसका शीर्षक सिलहट में विध्वंस मुक्त मतदान का अतिविशाल कार्य में संसूचित किया गया कि मतदाताओं के समक्ष अवरोध खड़े करने वाले अधिकारियों के विरुद्ध गंभीर आरोप थे ।

हबीगंज, जुलाई 7 - जनमत संग्रह का मतदान अभी-अभी पूर्ण हुआ है और 239 मतदान केन्द्रों के द्वार अभी हाल में बन्द हुए हैं ..... मुस्लिम लीग ने चहुओर गैर-मुस्लिम मतदाताओं को मतदान केन्द्रों पर जाने से रोकने के लिए किसी न किसी तरकीब का प्रयोग किया । मुस्लिम पीठासीन अधिकारियों ने खुल्लमखुल्ला मुस्लिम लीग का साथ दिया, इस बात की सूचना जनमत संग्रह कार्यालय को दी गई । एक ई. ए. सी. के विरुद्ध औपचारिक शिकायत दर्ज कराई गई है और एक मतदान केन्द्र के पीठासीन अधिकारी और उसके कर्मचारियों ने मुस्लिम पुलिस अधिकारियों के कदाचार और उनके सहयोगियों और लीगियों द्वारा कारित व्यवधान के कारण त्यागपत्र दे दिया ।" (लाहिरी, एन. एस. भाग II, पृष्ठ 237)

माननीय पंडित जवाहर लाल नेहरू और लार्ड माउंटबेटन के मध्य पत्र-व्यवहार में माउंटबेटन ने कहा, "अनियमितताएं, जैसी कि वहां थीं, के कारण जनमत संग्रह का परिणाम प्रभावित नहीं हो सकता था और बंगाल सीमा-रेखा आयोग को सिलहट की सीमा-रेखा के मामले में निपटने का कार्य सौंपा गया था ।" (लाहिरी, पृष्ठ 166)

पुनः महामहिम वायसराय द्वारा असम के गवर्नर को भेजे गए तारीख 21 जुलाई के पत्र के उद्धरण से ज्ञात होता है कि उन्होंने कहा था, "मैं पूर्णतः संतुष्ट हूं कि इसको (जनमत संग्रह को) उचित प्रकार से किया गया ।" (लाहिरी, पृष्ठ 167)

(4) दो फाइलें थीं, एक असम सरकार की थी और दूसरी महामहिम इंग्लैड की साम्राज्ञी की । असम सरकार की फाइल की प्रति को जला दिया गया था या नष्ट कर दिया गया था और फाइल के मात्र ब्लू नोट शीट को परिरक्षित रखा गया था । अतः वास्तविक घटनाएं कभी प्रकाश में नहीं आईं । सिलहट विभाजित हो गया ।

(5) माउंटबेटन को भेजे गए एक अन्य पत्र में नेहरू ने कहा –

> "एक आवश्यक मामला है जिसकी ओर हमारा ध्यान असम के प्रधानमंत्री श्री गोपीनाथ बोरोदोली द्वारा आकर्षित किया गया है ..... इस बात की अत्यधिक संभाव्यता है कि सिलहट जिला के कतिपय भागों को असम की सीमा-रेखा आयोग की रिपोर्ट आने के पश्चात् वापस किया जाना होगा.... ।" (लाहिरी, एन. एस. भाग II, पृष्ठ 226)

(5) इसके अतिरिक्त, जनमत संग्रह देश के किसी भी भाग को स्वतंत्रता प्रदान किए जाने के बाबत प्रदान किया गया प्राधिकार नहीं है । इसका अनुमोदन संसद् द्वारा किए जाने की आवश्यकता होती है । क्या सिलहट जनमत संग्रह का अनुमोदन ब्रिटिश या भारतीय संसद् द्वारा किया गया था, यह अज्ञात है । इस बात की संभाव्यता है कि इस समस्त प्रक्रिया में असम की एक बहुत बड़ी भूमि बिना किसी अनुमोदन के गंवा दी गई ।

नेहरू ने सिलहट के एक भाग को भारत में बनाए रखने का प्रयास किया और उनके साथ भारत में चाय के पौधारोपण के लिए हैदरी पर दबाव बनाने के लिए पौधारोपण करने वालों की लाबी, वामपंथी, श्रम संघ भी थे और तत्पश्चात् सिलहट का एक भाग असम में सम्मिलित किया जा सका था ।

इतिहास

ब्रिटिश शासन के अधीन असम का सृजन एक नए प्रांत के रूप में वर्ष 1974 में हुआ था और असम के राजस्व में बढ़ोतरी के

प्रयोजनार्थ सिलहट को बंगाल से असम को अन्तरित कर दिया गया था क्योंकि सिलहट में चाय का पौधारोपण बड़ी मात्रा में होता था । अतः, सिलहट जो सीमान्त बंगाली जिला था, असम का भाग बना दिया गया चूंकि ऐसा किया जाना डेलटा और पहाड़ियों के मध्य प्रभावी आर्थिक और बौद्धिक सम्पर्क को बनाए रखने के लिए आवश्यक प्रतीत किया गया था । तीन-चौथाई लोगों, जिनको बसाया गया, सिलहटी थे । सिलहट 1874 से 1947 तक असम का भाग बना रहा, सिवाय (1905-1912 की) संक्षिप्त अवधि के जब इसको बंगाल को प्रोत्साहित किए जाने के दौरान बंगाल के साथ जोड़ दिया गया था और बाद में इसको पुनः असम के साथ जोड़ा दिया गया । तारीख 6 और 7 जुलाई, 1947 को एक जनमत संग्रह पूर्वी बंगाल के विलय के प्रश्न के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ कराया गया था । जनमत संग्रह के परिणामस्परुप सिलहट को पूर्वी बंगाल का भाग बना दिया गया, सिवाय करीमगंज, बदरपुर और रतबड़ी के तीन थानों के । सर्वाधिक घृणित स्तर के धार्मिक उन्माद और पार्श्विकता को बढ़ावा दिया गया और जातीय आधार पर लोगों को मार भगाने के प्रयास किए गए जिसके कारण हिन्दुओं को भारत, वह देश जो आवश्यक रूप से उसका अपना देश था और जिससे उनको कभी अलग नहीं किया जा सकता था, नामक देश की ओर भागने के लिए विवश होना पड़ा । अत्याचार का इतिहास 1971 में भारत और बची हुई हिन्दू आबादी की मदद से पूर्वी पाकिस्तान के बांग्लादेश बन जाने के बाद भी जारी रहा । बलिदानों को भुला दिया गया और 1971 के पश्चात् परिस्थितियां पुनः बर्बरतापूर्ण हो गईं । वर्षों पश्चात् हिन्दू बंगाली पहचान को पुनः जांच के अधीन रख दिया गया और उनकी नागरिकता पर प्रश्न चिन्ह् लगाए जा रहे हैं इसलिए अब यह आवश्यक हो गया है कि सिलहट जनमत संग्रह, जिसके कारण सिलहट भारत से पृथक् हो गया, की सत्यतता और विधिक स्थिति का पुर्नपरीक्षण किया जाए ।

आरम्भिक चरणों में जब सिलहट को असम के साथ वर्ष 1874 में संलग्न किया गया, तो अनेक दशकों तक सिलहट बंगाल में विलय के लिए संघर्ष करता रहा । सिलहट के निवासियों ने तारीख 10 अगस्त, 1874 के अनुस्मारक के रूप में अपना विरोध भारत के तत्कालीन वायसराय और गवर्नर जनरल के समक्ष ऐसा किए जाने

की अपनी इच्छा को व्यक्त करते हुए दर्ज कराया था । (लाहिरी, संदोरी श्रीभूमि श्रीहोतो, भाग I पृष्ठ 311) ।

इसके विपरीत, असम उच्च पदों पर और अन्य क्षेत्रों में सिलहटी बंगालियों के प्रभुत्व के कारण अशांत हो गया था । इसके अतिरिक्त असम कांग्रेस ने सांस्कृतिक और भाषायी रूप से असम को सामंजस्यपूर्ण बनाए जाने के प्रयोजनार्थ सिलहट को बंगाल को अन्तरित किए जाने के विचार को अविभाजित भारत के भीतर प्रांतों के पुनर्गठन के प्रयोजनार्थ एक भविष्य की योजना के भाग के रूप में प्रस्तुत किया । असम कांग्रेस को इस बात चिन्ता नहीं थी कि सिलहट पाकिस्तान में चला जाएगा या भारत में रहेगा । गोपीनाथ बोरदोली ने सार्वजनिक रूप से इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि मंत्रिमडंल सिलहट को (भारत में) बनाए रखे जाने का इच्छुक नहीं है । अतः मुस्लिम लीग ने अतिउत्साह के साथ मतदान को प्रभावित किया और अंग्रेजों ने बिना किसी सहानुभूति और रुचि के जनमत संग्रह करा दिया । हिन्दु मतदाताओं को बलपूर्वक मतदान में भाग लेने से रोका गया । आयुधों से लैस बड़ी संख्या मुसलमानों ने राष्ट्रीय गार्ड, जो बंगाल से आए थे, को डराया-धमकाया । (लाहिरी, भाग II , पृष्ठ 142) । असम सरकार के एक मंत्री ने इन आरोपों का समर्थन किया । नेहरू इस मामले की गहराइपूर्वक जांच चाहते थे और उन्होंने कहा कि यदि संसूचित अनियमितताएं सत्य पायी जाती हैं, तो जनमत संग्रह की विधिमान्यता प्रश्नगत हो जाती है ।

वे दस्तावेज, जिनके आधार पर बड़ी संख्या में आरोप लगाए गए, को एक जाति विशेष के भाग्य निर्धारण के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किया गया था । तत्पश्चात् जो घटित हुआ, उसको जानकर राष्ट्र का अन्तःकरण हिल जाएगा और मानवता शर्मसार हो जाएगी ।

घृणित स्तर के अत्याचारों को भुला दिया गया और घाव भरने लगे, किन्तु इतिहास ने अपने आप को पुनः दोहराया और इस बार अपराधी अपने देश के ही लोग थे ।

असम का सिलहट के साथ बर्ताव

भारत ऐसा देश है जिसने विविध प्रकार की सभ्यताओं के उपदेश दिए हैं और उनका पालन किया है, एक ऐसा देश जिसने जातीय, सांस्कृतिक और भाषायी विविधता को सभ्यता के आरम्भ से

प्रश्रय दिया है और गले लगाया है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अब वह उत्तर-पूर्वी राज्य असम में जारी नीति के मतावलम्बन में इस भावना के पोषण में विफल हो रहा है । असम राज्य की असहनशीलता की आदत अत्यधिक पुरानी है और राज्य और उसके लोग सिलहट और बंगाली हिन्दुओं के लिए उस कठिनाई की स्थिति, जिसको वे आज बर्दाश्त कर रहे हैं, के बाबत अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार है ।

विस्थापित और बेदखल लोगों, जिनको सिलहट से आए हुए बंगाली कहा जाता है, के अधिकारों का सम्पूर्ण रूप से अनदेखा करते हुए असम के राजतंत्र ने अब स्वयं को अवैध आप्रवासियों या तथाकथित रूप से विदेशियों की पहचान करने वालों के कार्य में संलग्न कर लिया है । तारीख 24 मार्च 1971 की मध्यरात्रि को निर्णायक वर्ष के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई है । तारीख 30 जुलाई को निर्गत किए गए राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर के प्ररूप में चालीस लाख लोगों को नागरिकता से वंचित कर दिया गया है, जिनका भविष्य अनिश्चित हो गया है । नागरिकता संशोधन विधेयक, जिसका विरोध सम्पूर्ण असम की जनता द्वारा अत्यधिक दृढ़तापूर्वक किया जा रहा है, का पुनर्विलोकन उन लोगों, जिनको निशाना बनाया जा रहा है, के इतिहास के बाबत किए जाने की आवश्यकता है, उनकी राष्ट्रीयता ज्ञात है, उनके निवास स्थानों का दौरा किया जा चुका है और सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी ऐतिहासिक यात्रा की पृष्ठभूमि को खंगाला जा रहा है । यह मानवता के इतिहास में ऐसा पहला उदाहरण होगा जहां किसी एक जाति को दो बार बेदखली का सामना करना पड़ रहा हो-एक बार तब जब उनकी जन्मभूमि को पाकिस्तान और तत्पश्चात् बांग्लादेश में धार्मिक रूप से धर्मांध लोगों द्वारा हड़प लिया गया हो और दूसरी बार तब जब वे भारत वापस आए तो उनको आप्रवासी का नाम दे दिया गया हो ।

असम सदैव भाषायी और सांस्कृतिक आधार पर प्रांत के रूप में पुनर्गठन का इच्छुक रहा है । बंगाली भाषा बोलने वाले सिलहटियों को सम्मिलित किए जाने और खाली पड़ी हुई भूमि पर बंगाली अधिवासियों के लाखों की संख्या में आप्रवास और आगमन ने असम की विशिष्टता को नष्ट करने की चुनौती प्रस्तुत कर दी है ।

गोपीनाथ बोरदोली ने 1946 में एक ब्रिटिश प्रतिनिधिमंडल को बताया था कि असम सिलहट को बंगाल को सौंप देने के लिए बिल्कुल तैयार रहेगा ।

इतिहासकार सुजीत चौधरी ने लिखा

बंगाली भाषा बोलने वाले जिले को एक नासूर की भांति माना गया, जो बहुभाषायी असम के प्रादुर्भाव में अवरोध करने वाला हो । इसीलिए, जब जनमत संग्रह के विनिश्चय की घोषणा की गई, तो गोपीनाथ बोरदोली ने समस्त संबद्ध लोगों को संसूचित किया था कि मंत्रिमंडल असम को अपने पास बनाए रखने के लिए हितबद्ध नहीं है ।

वास्तव में, असम ने सिलहट में जनमत संग्रह को अपने पक्ष में करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया और यहां तक कि पंजाब से आने वाले जनमत संग्रह के समर्थकों को पाकिस्तान के पक्ष में जनमत जुटाने की अनुज्ञा भी दे दी थी । जब सिलहट के नेताओं ने सीमा-रेखा आयोग के समक्ष प्रभावी रूप से प्रतिनिधित्व करने के द्वारा जिले के एक भाग को बचाने का प्रयास किया, तो उनको हतोत्साहित किया गया ।

इतिहासकार सुजीत चौधरी ने कहा है कि यदि कोई विभाजन न होता तो असम में विदेशी का कोई विवाद भी न होता ।

विभाजन के पश्चात् सिलहटी बंगाली हिन्दुओं ने मानवाधिकारों के अतिक्रमण का वीभत्स रूप देखा, जो संसार को अज्ञात रहा । शरणार्थियों का सैलाब, जिसने अन्तर्राष्ट्रीय सीमा को पार किया और असम में प्रवेश किया, ने एक अन्य प्रकार के पक्षपात का सामना किया । इस बार यह पक्षपात भाषायी और सांस्कृतिक पक्षपात के रूप में सामने आया ।

असम में मुस्लिम बंगाली, जो शैक्षणिक रूप से पिछड़े थे, ने असमिया लोगों का पक्ष लेने का अवसर पाया और शैक्षणिक और सांस्कृतिक रूप से उन्नत बंगाली धीरे-धीरे पिछड़ते गए । 1956 में राज्यों का पुनर्गठन भाषायी आधार पर हुआ और असम का उच्च वर्ग सत्ता पर आसीन हो गया ।

सिलहट का इतिहास

प्राचीन काल के दृश्यावलोकन से असम में बंगाली हिन्दुओं की स्थिति को भलीभांति समझने में सहायता प्राप्त होगी ।

प्राचीन काल से ही सिलहट, जहां मुख्य रूप से इंडो-आर्यन ब्राह्मण निवास करते थे और जो जातीय रूप से किसी सीमा तक असमिया थे, वाणिज्यिक गतिविधियों का एक बड़ा केन्द्र था । यह विश्वास किया जाता है कि प्राचीन काल में वहां पर हरिकेला साम्राज्य स्थित था । सिलहट के अंतिम शासक गौड़ के राजा गोविन्द थे । सूफी मिशनरी शाह जलाल ने राजा गौड़ गोविन्द को पराजित किया और सम्पूर्ण क्षेत्र शाह जलाल के शासन के अन्तर्गत आ गया । यह वर्ष 1357 था । अतः 14वीं शताब्दी में सिलहट में इस्लामिक प्रभाव का आरम्भ दिखाई देने लगा । मुगल शासनकाल के दौरान सिलहट को एक डिक्री के अन्तर्गत बंगाल के साथ जोड़ दिया गया । सिलहट जिला वर्ष 1782 में स्थापित हुआ और तब से वर्ष 1878 तक यह जिला बंगाल प्रांत का भाग था । उसी वर्ष सिलहट को नवसृजित असम प्रांत में सम्मिलित किया गया और यह जिला वर्ष 1947 तक असम प्रांत का भाग बना रहा, सिवाय वर्ष 1905-1911 में बंगाल प्रांत के विभाजन काल के । वर्ष 1947 में जनमत संग्रह के परिणामस्वरूप सिलहट पूर्वी पाकिस्तान का भाग बन गया ।

विभाजन के पश्चात् पूर्वी पाकिस्तान और वर्ष 1971 और उसके पश्चात् बांग्लादेश से बड़ी संख्या में बंगाली हिन्दुओं के पलायन के क्या कारण थे जिनको जबरन बेदखल किया गया था और जिनको सीमा-रेखा के दोनों तरफ अंग्रेजों के भाषायी और धार्मिक पक्षपात वाले नीतिगत विनिश्चयों के कारण दो बार बेघर होना पड़ा । ये लोग, जिनमें से अधिकांश को भारत में अवैध आप्रवासी या विदेशी कहा जाता है, वहीं लोग हैं जो अविभाजित भारत के अंग थे । जनमत संग्रह, जिसके द्वारा सिलहट को पूर्वी बंगाल में सम्मिलित किया जाना कहा जाता है, विभाजन के पश्चात् पूर्वी पाकिस्तान का भाग बन गया । विभाजन साम्प्रदायिकता की ज्वाला को भड़काए रखे जाने के प्रयोजनार्थ अंग्रेजों द्वारा चली गई सर्वाधिक घिनौनी चाल थी । इस ज्वाला ने भारत के पूर्वी और पश्चिमी, दोनों किनारों पर काम किया । किन्तु जहां एक तरफ पंजाब में पलायन सीमा-रेखा के दोनों तरफ हुआ और पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थियों का पुनर्वास किया गया, बंगाली हिन्दू निरन्तर रूप से अशांति के शिकार बने रहे । अपनी

जमीन और घर दोनों को खोने और विदेशी की पहचान पाने के पश्चात्, ये लोग सदैव के लिए बेघर हो गए और आज इनको अपने उद्गम स्थान का भी अता-पता नहीं ।

भारतीय उप-महाद्वीप वर्ष 1947 में अंग्रेजों द्वारा देश के विभाजन के पश्चात् आकार में छोटा हो गया, उसके पूर्व इसका भूमि क्षेत्रफल अत्यधिक था और उस पर रहने वाले सभी निवासी आवश्यक रूप से भारतीय थे । विभाजित देश की संकल्पना कभी भी अस्तित्व में नहीं थी या लोगों की सोच में भी नहीं थी । फिर भी भारत के पूर्वी और पश्चिमी किनारों ने इस स्थिति को सर्वाधिक बर्दाश्त किया, इन स्थानों के निवासी जबरन बेदखली, दंगा, खून-खराबा के भयावह अनुभवों को भुगतने पर मजबूर हुए जिसने उनको विश्व में भीषणतम मानवीय त्रासदियों का भाग बना दिया । भारत के पूर्व में लोगों, जिनको बंगाली हिन्दू कहा जाता है और जो सिलहट के अत्यधिक उपजाऊ भूमि वाले भाग में रहते थे, का भाग्य रातों-रात बदल गया । संदेहास्पद जनमत संग्रह, जिसने उनके भाग्य का निर्णय किया, उनको मुस्लिम लीग के चालाकी भरे राजनैतिक तंत्र के माध्यम से बिना उनकी भागीदारी या इच्छा के दुश्मन देश का भाग बना दिया और प्रांतीय असम की कांग्रेस ने उनको भीषणतम हिंसा और अमानवीय कृत्यों को भुगतने के लिए मजबूर कर दिया, उनको शरणार्थी बना दिया और उनको जीवन पर्यन्त के लिए बेघर और बेदखल कर दिया । सरकार द्वारा किसी पुनर्वास कार्यक्रम के अभाव में ये लोग घर की तलाश में पूरे विश्व में बिखर गए ।

भारत निश्चित रूप से हिन्दू सभ्यता का देश रहा है । जैसा कि सिन्धु घाटी की सभ्यता से बरामद मोहरों, उत्कीड़नों, वैदिक काल के, महाकाव्यों में अभिलिखित प्राचीन साक्ष्यों से विदित होता है, हिन्दू जनसंख्या ही बड़ी मात्रा में थी और मुस्लमानों ने बाद में विजय प्राप्त की । ब्रिटिश बंगाली हिन्दू इस देश के निवासी रहे हैं । अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कोई हिन्दू शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और भावानात्मक रूप से किसी अन्य स्थान से संबंधित कैसे हो सकता है । उसका हृदय और घर भारत है, जो उसकी जन्मभूमि भी है । हम उसको उसके अत्यावश्यक अधिकारों में से किसी एक से भी वंचित करके उसके साथ घोरतम अन्याय कारित कर रहे हैं ।

अभिरक्षा शिविर

राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर, जो विघटन और विभाजन को बढ़ावा देने के लिए एक राज्य प्रायोजित तंत्र है, स्पष्ट नहीं है और यह अमानवतापूर्ण और पाश्विकतापूर्ण होगा और निकृष्टतम कोटि का अन्याय होगा यदि कभी भी राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर की अर्हता को पूरा न करने वालों (जिनमें से अधिकांश ऐसे पुरुष और स्त्री है, जो अस्सी वर्ष की आयु पूरी कर चुके हैं) को अभिरक्षा शिविरों, जो दुख के दिन काटने और मृत्यु को प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ स्थापित किए जाते हैं, में भेजा जाए । इन शिविरों में व्याप्त भयानक परिस्थितियां पहले ही प्रकाश में आ चुकी हैं । दस्तावेजों, जिनको यदि किसी ने यह समझकर कि उनकी आवश्यकता कभी उत्पन्न नहीं होगी, सावधानीपूर्वक परिरक्षित न किया हो और उनकी कमी के कारण राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर में सम्मिलित होने में असफल रहा हो, को अभिरक्षा शिविर में तकलीफें बर्दाश्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता । (राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर में) सूचीबद्धता के त्रुटिपूर्ण तंत्र और उसके कारण तकलीफें बर्दाश्त करने वाले लोग उसको न्यायालय में चुनौती दे सकते हैं ।

जबकि हिन्दू बंगालियों के लिए पुनर्वास कार्यक्रम अप्रत्यक्ष रूप से अविद्यमान रहा है, राज्य अभिकरण उनकी पहचान विदेशी के रूप में करने के इच्छुक रहे । बजाय इसके कि उनको उन घोर परिस्थितियों और उत्पीड़न का सामना करने के लिए मजबूर किया जाए, जिसको उन्होंने पूर्वी पाकिस्तान और तत्पश्चात् बांग्लादेश में सहन किया, यह उचित होगा कि उन हजारों लोगों को गोलियों से उड़ा दिया जाए ।

सम्पूर्ण दलील यह है कि वे लोग जो ऐतिहासिक रूप से कारित की गईं भारी भूलों और राजनैतिक नौटंकी के दुर्भाग्यशाली शिकार रहे हैं, को एक ऐसे विनिश्चय में अनभिज्ञ रूप से सह-अपराधी बनाया जा रहा है जिसमें उनको कभी भी अपनी आवाज उठाने का मौका ही नहीं मिला या जिसमें उनकी कोई भूमिका ही नहीं थी, अतः इस बात की अनुज्ञा कदापि नहीं दी जा सकती कि उनको भारत से विदेशी के रूप में बाहर कर दिया जाए और न ही उनकी उस भूमि, जिससे वह आवश्यक और अभिन्न रूप से संबंधित है, में प्रवेश के प्रयोजनार्थ कोई वर्ष निर्धारित किया जाए । आज यदि बांग्लादेश में

निवास करने वाले बंगाली हिन्दु किसी भी समयबिन्दु पर यह निर्णय लेते हैं कि वह भारत में स्थानांतरित होना चाहते हैं तो उनको किसी भी दस्तावेज को प्रस्तुत किए जाने के लिए कहे जाए बिना नागरिकता की हैसियत प्रदान की जाए ।

करार के व्यापक बिन्दुओं में से एक बिन्दु, जिसको भारतीय स्वतंत्रता पर प्रदान की जाने वाली छात्रवृत्ति में सम्मिलित किया गया है, वह सद्भावी भूमिका है जिसका निर्वाह द्वि-राष्ट्र सिद्धांत को क्रियान्वित किए जाने के समय भारतीय उप-महाद्वीप का विभाजन भारत और पाकिस्तान के रूप में किए जाते समय किया गया है । विद्वानों जैसे कि पीटर गोट्सचाक ने 2013 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "धर्म विज्ञान और साम्राज्य: ब्रिटिश भारत में हिन्दूवाद और इस्लाम का वर्गीकरण" में यह दलील दी है कि धार्मिक गोलबंदी ने भारत के विभाजन में बहुत बड़े पैमाने पर योगदान किया । यहां पर यह दर्शित किया जाना महत्वपूर्ण है कि पाकिस्तान आंदोलन, जिसका नेतृत्व मोहम्मद अली जिन्ना द्वारा किया गया था, ने यह दलील दी थी कि उसका आंदोलन एक ऐसी मांग को समर्पित है जिसके द्वारा भारतीय उप-महाद्वीप के मुसलमानों के अन्यन रूप से सशक्तीकरण के लिए एक भू-क्षेत्र सृजित किया जाएं । जब जिन्ना ने लाहौर में वर्ष 1940 में मुस्लिम लीग की वार्षिक बैठक को संबोधित किया है । उन्होंने समझौते और सह-अस्तित्व की समस्त बातों को स्वीकार किया और घोषणा की कि "हिन्दू और मुस्लमान दो भिन्न धार्मिक दर्शनों, सामाजिक रीति-रिवाजों और ग्रंथों ..... से संबंधित हैं और वास्तव में वे दो भिन्न सभ्यताओं से संबंधित हैं ....." (शरीफुद्दीन पीरजादा, पाकिस्तान के आधार स्तंभ : अखिल भारतीय मुस्लिम लीग दस्तावेज, कराची में मुस्लिम लीग के अध्यक्षीय भाषण को संबोधित करते हुए) । अतः जब तारीख 14 अगस्त, 1947 को देश का विभाजन हुआ, तो नीति निर्माताओं के मस्तिष्क में इस बाबत कोई संदेह नहीं था कि द्वि-राष्ट्र सिद्धांत के द्वारा दोनों ही वर्गों का एक दूसरे के विरुद्ध आवश्यक रूप से एकत्रीकरण हुआ और अंततः इस एकत्रीकरण की विजय हुई और मुस्लमानों के लिए अनन्य घर के रूप में पाकिस्तान का जन्म हुआ । श्री जिन्ना के समर्थक इतने अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे जितने की उनके नेता थे, जैसा कि उनके नेताओं ने असंदिग्ध रूप से उल्लेख भी किया है कि गैर-मुस्लमान जो

पाकिस्तान में रहेंगे, मुस्लमान, जो विभाजन के पश्चात् भारत में रह जाएंगे, के साथ अच्छे बर्ताव को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ बंधक के रूप में रहेंगे । इसी संदर्भ में यह हुआ कि लोग यह दलील दे सकते हैं कि पाकिस्तान में हिन्दुओं की स्थिति विभाजन के प्रथम दिन से ही अत्यधिक दयनीय रही जैसा कि उस नए देश के जन्म के आरम्भ से ही घोषणा कर दी गई थी कि, "हम इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि पाकिस्तान इस्लामिक सिद्धांतों पर आधारित मुस्लिम राष्ट्र बनने जा रहा है ।" (एस. पीरजादा फाउंडेशन आफ पाकिस्तान, खंड-II, पृष्ठ 571) ।

पाकिस्तान को स्थापित किए जाने के पीछे का दर्शन इस्लाम पर आधारित होने के कारण वहां रहने वाले हिन्दुओं का जीवन स्वातंत्र्य और संपत्ति और उन लोगों की भी जिन्होंने अपने आप को सीमा-रेखा के गलत भाग की ओर रखने का निर्णय लिया, खतरे में पड़ गई । पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं की दयनीय स्थिति की ओर शीघ्र ही भारत के नेताओं का ध्यान आकर्षित हुआ जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि, "वे हमारे लोग हैं और हमारे ही रहेंगे चाहे कुछ भी हो और हम भले और बुरे दोनों ही अवसरों पर उनकी भलाई के लिए अधिकारिक प्रयास करते रहेंगे ।" (जवाहरलाल नेहरू का 15 अगस्त, 1947 को देशवासियों को दिया गया संदेश, जो अमृत बाजार पत्रिका में प्रकाशित हुआ था) ।

यहां तक कि सरदार पटेल भी पाकिस्तान के हिन्दुओं को समर्थन के प्रति स्पष्ट थे जिन्होंने उनको सीमा-रेखा के गलत हिस्से की ओर पाया । उनको समाचारपत्र द्वारा यह घोषणा करते हुए उद्धृत किया कि, "किन्तु सीमापार रहने वाले हमारे भाइयों को यह महसूस नहीं करना चाहिए कि वे उपेक्षित या भूले-बिसरे लोग हैं । उनका कल्याण हमारी सतर्कता पर आधारित होगा और हम इस आशा और विश्वास के साथ उनके भविष्य के हितों के लिए कार्य करेंगे कि कभी न कभी दोनों देश सामान्य निष्ठा को ध्यान में रखते हुए फिर से एकजुट हो जाएंगें ।" (अमृत बाजार पत्रिका में तारीख 15 अगस्त, 1947 को प्रकाशित) ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

पाकिस्तान के एक देश के रूप में आरम्भ होने के तुरन्त पश्चात्

ही अल्पसंख्यकों को डर, धमकी और हिंसा का शिकार बनाया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि ये लोग अपने घरों से विस्थापित हो गए । आज अन्तर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति द्वारा हिंसा और आघात के संदर्भ में इस बात को स्वीकार किया जाता है, "हिंसा को सदैव हत्या, लूटमार, अपहरण के बाह्य कार्यों द्वारा नहीं मापा जा सकता ..... हिंसा के अन्तर्गत ऐसी स्थिति भी समाविष्ट होती है जिसमें भय का भाव उत्पन्न किया जाता है और उस भय के भाव को ऐसे तरीके से बढ़ाया जाता है कि वह क्रमबद्ध, अभिभावी और अपरिहार्य हो जाता है ।" (मेघना गुहा ठाकुरता, जशोधरा बागची और सुभो रंजनदास गुप्ता द्वारा संपादिक 'अपरुटेड एण्ड डिवाइडेड' में । दि ट्रामा एण्ड द ट्रायंफ, कोलकाता, 2003, पृष्ठ 98-112) । अतः जब पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों को सताया गया और उन्होंने विभिन्न प्रकार की हिंसा का सामना किया, तो उनको यह महसूस हुआ कि अब उनका पाकिस्तान में रह पाना असंभव है और वे सीमा-रेखा को पार करके भारत चले आए, उनके पास केवल एक ही सहारा था जो भारतीय राजनैतिक नेतृत्व द्वारा पाकिस्तान के अल्पसंख्यक समुदाय को दिया गया आश्वासन था । 1951 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, 1949 में विस्थापितों के 24,600 परिवार, लगभग 1,14,500 व्यक्ति थे जो पूर्वी पाकिस्तान से पलायन करके भारत आए थे (भारत की जनगणना, खंड-XII पृष्ठ 356) । जनगणना में आगे बताया गया है कि "सरकार और प्रशासनिक सेवा में और व्यापार और कारबार में हिन्दुओं के लिए घटते हुए अवसरो, अन्य धर्मों के प्रति धर्मोन्माद और असहिष्णुतापूर्ण व्यवहार के अत्यधिक घटिया उदाहरण और पाकिस्तान के उच्च पदस्थ नेताओं द्वारा की जाने वाली निरन्तर घोषणाएं कि पाकिस्तान शुद्धतः इस्लामिक देश-पाकिस्तान की संविधान सभा के उद्देश्य वाले प्रस्ताव में प्रतिष्ठापित विचारधारा पर आधारित देश बनेगा, के कारण हिन्दुओं का पाकिस्तान से भारत की ओर बड़ी संख्या में पलायन हुआ" (भारत की जनगणना, खंड-XIII, पृष्ठ 356) । 1950 (फरवरी-मार्च) के दंगों के तुरन्त पश्चात् हिन्दुओं का पूर्वी पाकिस्तान से भारत को बड़ी संख्या में पलायन हुआ । मार्च-अप्रैल, 1950 में ऐसे विस्थापित व्यक्तियों की संख्या पांच लाख से अधिक थी । किन्तु जनगणना रिपोर्ट दर्शित करती है कि लगभग 2,59,946 व्यक्ति असम में आ चुके थे । ऐसे व्यक्तियों की उपस्थिति के कारण

एक राजनैतिक विरोध आरम्भ हुआ जिस कारणवश भारत सरकार को राजनैतिक विरोधों के बावजूद असम में सताए गए हिन्दुओं को बसाए जाने को विधिसम्मत करने के प्रयोजनार्थ एक अधिनियम पारित करना पड़ा । यह अधिनियम 1950 का आप्रवासी (असम से निष्कासन) अधिनियम है जिसकी धारा 2 में असम से कतिपय आप्रवासियों को निष्कासित किए जाने के लिए उपबंधित है कि –

"परन्तु यह तब जबकि इस धारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को लागू नहीं होगी जो किसी भी क्षेत्र में, जो अब पाकिस्तान का भाग है, उस क्षेत्र में सिविल अशांति या ऐसी अशांति के भय के कारण अपने निवासस्थान से विस्थापित हो गया है और बाद में असम का निवासी हो गया है ।" (1950 के अधिनियम संख्या 10 की धारा 2) पूर्वी पाकिस्तान में स्थिति के अत्यधिक खराब हो जाने के कारण 1956 तक तीन लाख नौ सौ नब्बे हजार विस्थापित व्यक्ति असम में बस चुके थे (यू. भास्कर राव - द स्टोरी आफ रिहबिलिटेशन, भारत सरकार 1967)

बांग्लादेश के जन्म के साथ ही 1950 के अधिनियम को भूला दिया गया और यह बिना किसी उपयोग के पड़ा रहा । इस अधिनियम को 2005 में पुनर्जीवित किया गया, जब उच्चतम न्यायालय ने 2000 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 131 में पारित अपने निर्णय के पैरा 83 में अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि आप्रवासी (असम से निष्कासन) अधिनियम अधिकारातीत अधिनियम के रूप में अपास्त किया जा चुका है और इस अधिनियम को समाप्त किया जा चुका है फिर भी असम में अवैध विदेशियों को विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ गठित अधिकरणों का मार्गदर्शन अन्य अधिनियमों और कानूनों के अतिरिक्त 1950 के आप्रवासी (असम से निष्कासन) अधिनियम द्वारा भी किया जाएगा [(2005) 5 एस. सी. सी. 656 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2920] । न्यायमूर्ति माथुर ने अभिनिर्धारित किया कि, "हम अपना निष्कर्ष निकालते हुए यह अभिनिर्धारित करते हैं कि 1983 के अवैध आप्रवासी (अधिकरणों द्वारा विनिर्धारण) अधिनियम के उपबंध संविधान के अधिकारातीत हैं और तद्नुसार उनको समाप्त किया जाता है परिणामस्वरूप 1983 के अवैध आप्रवासी (अधिकरणों द्वारा विनिर्धारण) अधिनियम के अन्तर्गत गठित अधिकरण और अपीली अधिकरण कार्य करना बन्द कर देंगे । असम के मामलों में 1920 का पासपोर्ट (भारत

में प्रवेश) अधिनियम, 1946 का विदेशी विषयक अधिनियम, 1950 का आप्रवासी (असम से निष्कासन) अधिनियम और 1967 का पासपोर्ट अधिनियम लागू होंगे .... ।

इस निर्णय ने असम में 1971 के पश्चात् भी 1950 के अधिनियम को पुनर्जीवित करने में सहायता प्रदान की, तद्द्वारा बांग्लादेश में भी हिन्दुओं, जिन्होंने हिंसा और अत्याचार से बचने के लिए भारत को पलायन करने का निर्णय लिया था, को संरक्षण प्रदान किया ।"

2000 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 131, **सर्वानंद सोनोवाल** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1] वाले मामले के पैरा 83 को यहां पर नीचे तत्काल निर्देश के प्रयोजनार्थ प्रत्युत्पादित किया गया है –

> "83. अंत में हमारा निष्कर्ष यह है कि 1983 के अवैध आप्रवासी (अधिकरणों द्वारा विनिर्धारण) अधिनियम के उपबंध संविधान के अधिकारातीत हैं और तद्नुसार उनको समाप्त किया जाता है । 1984 के अवैध आप्रवासी (अधिकरणों द्वारा विनिर्धारण) नियम भी अधिकारातीत हैं और उनको भी समाप्त किया जाता है । परिणामस्वरूप 1983 के अवैध आप्रवासी (अधिकरणों द्वारा विनिर्धारण) अधिनियम के अन्तर्गत गठित अधिकरण और अपीली अधिकरण कार्य करना बन्द कर देंगे । असम के मामलों में 1920 का पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) अधिनियम, 1946 का विदेशी विषयक अधिनियम, 1950 का आप्रवासी (असम से निष्कासन) अधिनियम और 1967 का पासपोर्ट अधिनियम लागू होंगे । 1983 के अवैध आप्रवासी (अधिकरणों द्वारा विनिर्धारण) अधिनियम के अन्तर्गत गठित अधिकरणों के समक्ष लम्बित सभी मामले 1964 के विदेशी (अधिकरण) आदेश के अन्तर्गत गठित अधिकरणों को अन्तरित हो जाएंगे और उन मामलों को विदेशी अधिनियम और उसके अन्तर्गत विरचित नियमों में उपबंधित तरीके और 1964 के विदेशी (अधिकरण) आदेश के अन्तर्गत विहित प्रक्रिया के

[1] (2005) 5 एस. सी. सी. 656 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2920.

अनुसार निर्णीत किया जाएगा । इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि सक्षम प्राधिकारी और संविदा समिति को किसी तथाकथित अवैध आप्रवासी के विरुद्ध आरम्भ की गई किसी कार्यवाही को निरस्त करने का कोई प्राधिकार या अधिकारिता प्राप्त नहीं है, अतः उक्त प्राधिकारियों द्वारा पारित निरस्तीकरण के आदेशों को विधि की दृष्टि में व्यर्थ और अविद्यमान घोषित किया जाता है । केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार का प्राधिकार होगा कि वे ऐसे समस्त व्यक्तियों, जिनके मामलों को सक्षम प्राधिकारी द्वारा या तो संवीक्षा समिति की सिफारिशों के कारण या किन्हीं अन्य कारणोंवश 1983 के अवैध आप्रवासी (अधिकरणों द्वारा विनिर्धारण) अधिनियम के अन्तर्गत गठित अधिकरणों को निर्दिष्ट नहीं किया गया, के विरुद्ध विदेशी विषयक अधिनियम के अन्तर्गत नई कार्यवाहियां आरम्भ करें । अपीली अधिकरणों के समक्ष लम्बित अपीलों के बारे में यह उपधारणा की जाएगी कि उनका उपशमन हो गया है ।"

5. यहां पर मैं उल्लेख करता हूं कि विधियां लोगों के लिए बनायी जाती हैं न कि लोग विधियों के लिए और यह भी एक तथ्य है कि वर्तमान में विधि तभी प्रभावी हो सकती है जब इतिहास और आधारभूत वास्तविकताओं पर विचार किया जाए । इसलिए मैं अपने परम प्रिय प्रधानमंत्री, गृह मंत्री, विधि मंत्री और संसद् के माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे एक ऐसी विधि अधिनियमित करें जो हिन्दुओं, सिखों, जैनियों, बौद्धों, पारसियों, ईसाइयों, खासियों, जैनतियों और गारो, जो पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से इस देश में शांतिपूर्वक रहने के लिए आए हैं, को पूरी गरिमा के साथ और इस प्रयोजनार्थ कोई निर्धारण वर्ष निर्धारित किए बिना रहने की इजाजत दी जाए और उनसे कोई बिना प्रश्न पूछे या बिना कोई दस्तावेज प्रस्तुत कराए, नागरिकता प्रदान की जाए । उनको यह अनुज्ञा प्रदान की जानी चाहिए कि वे भारत में किसी भी समय आ सकते हैं और सरकार उनका उचित रूप से पुनर्वास कर सकती है और उनको भारत का नागरिक घोषित कर सकती है । यही सिद्धांत उन हिन्दुओं और सिखों के बारे में भी अपनाया जाना चाहिए जो भारतीय मूल के हैं और वर्तमान में विदेश में रह रहे हैं कि वे किसी भी समय भारत में आ सकते हैं और उनको अविवेचित रूप से भारत का

नागरिक माना जाएगा । यह न्यायालय यह प्रत्याशा करती है कि भारत सरकार निर्दोष हिन्दुओं, सिखों, जैनियों, बौद्धों, ईसाइयों, खासियों, जैनतियों और गारो, जो पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से आए हैं और जिनको अभी भी विदेशों से आना है, को संरक्षण प्रदान करने के प्रयोजनार्थ बोधगम्य निर्णय लेगी चूंकि उनको भारत में नागरिक के रूप में आने का अधिकार है । यद्यपि सीमा-रेखा आयोग को विभाजन के समय नियुक्त किया गया था, किन्तु सीमा-रेखा आयोग ने उचित प्रकार से कार्य नहीं किया और भारत को दो भागों में विभाजित करने के प्रयोजनार्थ एक काल्पनिक सीमा-रेखा खींच दी । इसका एक ज्वलंत उदाहरण यह है कि यदि हम सीमा पर जाएं, तो यह समझ पाना कठिन हो जाता है कि कौन सी भूमि भारत में आती है और कौन सी बांग्लादेश में क्योंकि किसी की रसोई तो भारत में है और उसका शयनकक्ष बांग्लादेश में ।

भारत नेपाल संधि पर भी विचार किया जाना चाहिए ।

इसलिए, मैं मात्र यह कह सकता हूं कि भारत में रहने वाले हिन्दुओं, सिखों, जैनियों, बौद्धों, ईसाइयों, खासियों, जैनतियों और गारो, चाहे वह किसी भी तारीख पर भारत में आए हों, को भारत का नागरिक घोषित किया जाना चाहिए और वे जिनको भविष्य में भारत में आना है, पर भी भारत के नागरिक के रूप में विचार किया जाना चाहिए । तथापि, मैं मुस्लिम भाइयों और बहनों के विरुद्ध नहीं हूं, जो सदियों से भारत में रह रहे हैं और भारतीय विधियों का पालन कर रहे हैं, उनको भी शांतिपूर्वक रहने दिया जाना चाहिए । मैं भारत सरकार से यह अनुरोध भी करता हूं कि समस्त भारतीय नागरिकों के लिए एक समरूप विधि बनायी जानी चाहिए और समस्त भारतीयों को देश की विधि और संविधान का पालन करने के लिए बाध्य होना चाहिए । ऐसा कोई भी व्यक्ति, जो भारतीय विधियों और संविधान का विरोध करता है, को देश का नागरिक नहीं माना जा सकता । हमको स्मरण रखना चाहिए कि सर्वप्रथम हम भारतीय हैं, तत्पश्चात् अच्छे मनुष्य हैं और तत्पश्चात् उस समुदाय के हैं जिससे हम संबंधित है ।

मैं आशा करता हूं कि भारत सरकार इन वंचित लोगों, जिनके बारे में ऊपर चर्चा की गई है और जिनको अपनी भूमि, संपत्तियों इत्यादि को छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा, के हितों के संरक्षण के लिए मानवता के आधार पर निर्णय लेगी ।

अनेक अधिवक्ताओं ने यह भी कहा है कि असम के अभिरक्षा शिविर, जहां लोगों को विदेशी के रूप में चिह्नांकित करके रखा गया है, हथकड़ियों में जकड़े हुए हैं और अमानवीय स्थितियों में जीवनयापन कर रहे हैं ।

भारत ने स्वाधीनता रक्तपात के पश्चात् प्राप्त की थी और इस रक्तपात के घोरतम भुक्तभोगी हिन्दू और सिख थे, जिनको अपने पूर्वजों की संपत्ति और जन्मस्थान को आंसू बहाते हुए और भय के अन्तर्गत छोड़ना पड़ा और जिसको वह कभी भूल नहीं सकेंगे । तथापि, मैं यह उल्लेख करके कोई गलत कार्य नहीं कर रहा कि जब सिख भारत में आए, तो सरकार ने उनका पुनर्वास किया किन्तु हिन्दुओं के साथ ऐसा बर्ताव नहीं किया गया । इसलिए, यह कहना सही नहीं है कि भारत को स्वाधीनता अहिंसा के द्वारा प्राप्त हुई बल्कि यह स्वाधीनता वास्तव में हिंसा के द्वारा प्राप्त हुई जिसमें लाखों की संख्या में हिन्दुओं और सिखों ने अपने जीवन, संपत्ति, भूमि और जीवन-यापन के साधनों का बलिदान दिया ।

पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के मध्य सीमा-रेखा का विनिर्धारण और साथ ही जनमत संग्रह पूर्णतया दूषित थे और हमारे नेता आने वाली पीढ़ियों और देश के हित को विचार में रखे बिना स्वाधीनता प्राप्ति के प्रयोजनार्थ अत्यधिक जल्दी में थे, इसीलिए आज की समस्त समस्याएं उत्पन्न हुई हैं ।

मैं बराक घाटी और साथ ही असम घाटी के समस्त हिन्दुओं से अपील करता हूं कि वे एक साथ बैठकर शांतिपूर्ण हल खोंजे क्योंकि हमारी संस्कृति, रूढ़ियां और धर्म एक हैं । हमको मात्र भाषा के आधार पर एक दूसरे से घृणा नहीं करनी चाहिए । इसके अतिरिक्त, मैं यह उल्लेख भी करता हूं कि मेरे विचार में वर्तमान राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर प्रक्रिया त्रुटिपूर्ण हैं चूंकि अनेक विदेशी भारतीय बन गए हैं और मूल भारतीय छूट गए हैं जो कि अत्यधिक दुखद है ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

मैं इस बात को स्पष्ट करता हूं कि किसी को भी भारत को एक अन्य इस्लामी देश बनाने का प्रयास नहीं करना चाहिए, अन्यथा यह भारत और विश्व के लिए सर्वनाश का दिन होगा । मुझे पूर्ण विश्वास है कि केवल नरेन्द्र मोदी के अन्तर्गत चलने वाली सरकार मामले की घोरता को समझेगी और आवश्यक कार्यवाही करेगी जैसा कि ऊपर कहा गया है और हमारी मुख्यमंत्री ममता जी राष्ट्रहित में इस संबंध में सहयोग करेंगीं ।

6. अब मैं, 2018 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 448 में अन्तर्वलित विवाद्यकों पर विचार करता हूं । याची के मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं :–

"प्रत्यर्थी उन कारणोंवश, जो केवल उन्हीं को ज्ञात होंगे, नौकरी के उम्मीदवारों को अधिवास प्रमाणपत्र प्रदान करने से इनकार करने के द्वारा जानबूझकर परेशान कर रहे थे जिसके परिणामस्वरूप अनेक छात्रों का जीवन और आजीविका के अवसर नष्ट हो रहे थे । पूर्व में भी अनेक पीड़ितों ने अपनी शिकायतों को इस माननीय न्यायालय के समक्ष अनेक रिट याचिकाओं के माध्यम से उठाया और उनके मामले को अंतिम रूप से निपटाए जाने के प्रयोजनार्थ इस माननीय उच्च न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा 2016 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 203, रब्बे आलम **बनाम** मेघालय राज्य और अन्य [(2017) 1 एम. जे. 128] वाले मामले में एक विस्तृत आदेश पारित किया गया जिसके अनुसार अधिवास प्रमाणपत्र जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ अनिवार्य अवधि पांच दिन है और प्रमाणपत्र मात्र पुलिस रिपोर्ट के आधार पर जारी किया जाता है जिसमें असफल होने पर माननीय न्यायालय के आदेश का अवमान माना जाएगा । इस मामले के याची ने भारतीय सेना में भर्ती के लिए आवेदन किया और इसी प्रयोजनार्थ उसने प्रत्यर्थियों के कार्यालय में तारीख 18 जनवरी, 2018 को आनलाइन अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन किया और यद्यपि अपेक्षित नहीं था, फिर भी याची ने समस्त दस्तावेज जैसे कि जन्म प्रमाणपत्र, माता-पिता के सम्पूर्ण विवरण, स्वयं के शैक्षणिक प्रमाणपत्र, राशन कार्ड इत्यादि भी प्रस्तुत कर दिए थे । फिर भी प्रत्यर्थी संख्या 3 दस माह बीत जाने के बावजूद याची के मामले में सोता रहा और याची भिखारी की भांति सैकड़ों बार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास दौड़ता रहा और इन सब बातों के बावजूद याची ने समस्त क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया और उसको भारतीय सेना से अंतिम रूप से नियुक्ति पत्र भी प्राप्त हो गया । व्यथित होकर याची ने 2018 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 415 इस न्यायालय के समक्ष फाइल की और इस न्यायालय ने तारीख 15 नवम्बर, 2018 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी को निर्देशित किया कि वे याची के मामले में पांच दिनों के भीतर नियमानुसार विचार करें । उक्त आदेश प्राप्त होने पर प्रत्यर्थी 10 माह से अधिक समय तक याची के मामले में सोते रहने के पश्चात् अचानक नींद से जागे और क्रोध से उत्तेजित होते हुए और

माननीय न्यायालय के आदेश का मजाक उड़ाते हुए गूढ़ भाषा में दो लाइन का आदेश याची के निवास पर देर रात्रि यह सूचित करते हुए पहुंचा दिया कि अधिवास प्रमाणपत्र के लिए याची का आवेदन अस्वीकृत किया जा चुका है । अतः याची हाथ जोड़कर इस माननीय न्यायालय के समक्ष समुचित अनुतोष प्राप्त करने के लिए उपस्थित हुआ है ।"

7. याची के विद्वान् काउंसेल श्री आर. गुरुंग ने निवेदन किया कि याची विगत तीन पीढ़ियों से शिलाग का निवासी है और उसने अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन किया था किन्तु उसको इस न्यायालय के मध्यक्षेप के पश्चात् अधिवास प्रमाणपत्र मिलने में दस माह का समय लग गया ।

8. विद्वान् महाधिवक्ता श्री ए. कुमार, जिनकी सहायता विद्वान् सरकारी अधिवक्ता सुश्री आर. कोलनी ने की, ने निवेदन किया कि इस बाबत स्पष्ट अधिसूचना है और इसलिए उनके विचार में स्थायी निवास प्रमाणपत्र या अधिवास प्रमाणपत्र प्राप्त करने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए । फिर भी उन्होंने कतिपय अधिसूचनाएं प्रस्तुत कीं जिनकी संख्या पी. ओ. एल. 97/74/174 तारीख 10 जून है जिसमें वर्ष स्पष्ट नहीं है । विद्वान् महाधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तीन निर्णय पारित किए गए हैं ।

9. इसके विपरीत विद्वान् अपर महासालिसिटर सुश्री ए. पाल ने निवेदन किया कि शपथपत्र के पैरा 8 से यह स्पष्ट है कि मेघालय सरकार का आशय रहा है कि अधिवास प्रमाणपत्र प्रदान न किए जाएं, जो संविधान की संकल्पना के सर्वथा विपरीत हैं और उन्होंने प्रार्थना की कि इस संबंध में आवश्यक निर्णय पारित किया जाए ।

10. अब मैं इस विवाद्यक को विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ माननीय उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों को प्रत्युत्पादित करुंगा । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सोन्दुर गोपाल** बनाम **सोन्दुर रजनी**[1] वाले मामले में जो मताभिव्यक्ति की, वह निम्नलिखित है :–

"26. अधिवास तीन प्रकार के होते हैं अर्थात् उत्पत्ति स्थान का अधिवास, विधि के क्रियान्वयन द्वारा अधिवास और अभिरुचि का

---

[1] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2678.

अधिवास । हम वर्तमान मामले में उत्पत्ति स्थान के अधिवास और अभिरुचि के अधिवास से संबद्ध हैं । उत्पत्ति स्थान का अधिवास के संबंध में यह आवश्यक नहीं है कि वह जन्म का स्थान हो । पिता-माता की उनके अधिवास स्थान से अस्थायी रूप से अनुपस्थिति के दौरान बच्चे का जन्म उस स्थान को बच्चे का अधिवास स्थान नहीं बना देगा जहां उसका जन्म हुआ है । अभिरुचि के अधिवास की स्थिति में व्यक्ति अपने निवास स्थान का अधित्यजन कर देता है और वह किसी अन्य अधिवास स्थान को अर्जित कर लेता है किन्तु उसके लिए किसी अन्य अधिवास स्थान का अर्जन ही पर्याप्त नहीं है । उत्पत्ति स्थान का अधिवास तब तक अभिभावी रहता है जब तक कि अन्य अधिवास स्थान अर्जित न कर लिया जाए किन्तु इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में उत्पत्ति स्थान के अधिवास के अधित्यजन का आशय स्पष्ट होना चाहिए । इस बात को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि आस्ट्रेलिया अभिरुचि का अधिवास स्थान है यदि पति ने आस्ट्रेलिया में स्थायी निवास की हैसियत प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ तारीख 25 जनवरी, 2003 के 18 माह की अवधि के आवासीय किराया करार, अप्रैल, 2003 में वारावी पब्लिक स्कूल में नामांकन और तारीख 11 नवम्बर, 2003 को पति और पत्नी द्वारा आवेदन के प्रस्तुतिकरण का अवलंब लिया है ।

27. जन्म के अधिवास स्थान को परिवर्तित करने का अधिकार किसी भी व्यक्ति को प्राप्त है जो विधिक रूप से किसी अन्य पर निर्भर न हो और ऐसा व्यक्ति अभिरुचि का अधिवास अर्जित कर सकता है । यह अभिरुचि के देश में स्थायी रूप से रुचि के साथ निवास करने के द्वारा किया जाता है, जब तक कि यह साबित नहीं कर दिया जाता कि अधिवास स्थान के परिवर्तन के विरुद्ध उपधारणा है । इसलिए, वह व्यक्ति अभिकथित रूप से यह साबित कर देता है कि उसका आशय सदैव उसके मस्तिष्क में है, जिसका अनुमान उस व्यक्ति के जीवन में किसी भी कार्य, घटना या परिस्थिति से लगाया जा सकता है । लम्बी अवधि तक निवास उसके इस प्रकार के आशय का साक्ष्य होता है और इसी प्रकार से राष्ट्रीयता के परिवर्तन का भी साक्ष्य होता है ।"

उपरोक्त निर्णय से मुझे यह प्रतीत होता है कि किसी विशिष्ट जिले या

राज्य में निवास करने वाली कोई भी व्यक्ति अधिवास प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए आवेदन कर सकता है ।

11. इस न्यायालय ने **रब्बे आलम** बनाम **मेघालय राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में पैरा 6 और 7 में जो मताभिव्यक्ति की है वह निम्नलिखित है :–

> "6. हम सभी जानते हैं कि भारत एक देश और एक राष्ट्र है और भारत के प्रत्येक नागरिक को देश के किसी भी भाग में रहने या निवास करने का पूरा अधिकार है, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता । इस भाव में प्रत्येक नागरिक या तो जन्म द्वारा या अभिरुचि द्वारा अधिवासी है, तथापि, एक व्यक्ति एक ही समय में दो अधिवास प्रमाणपत्र धारण नहीं कर सकता । उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति मुम्बई से यहां आता है और पांच वर्ष तक यहां पर निवास करता है, तो उसको अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन करने का पूरा अधिकार है और यह अधिकार उसके बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों को भी प्राप्त होगा । इसी प्रकार से, कोई व्यक्ति जिसका जन्म कोलकाता में हुआ है, कोलकाता का अधिवासी अपने आप ही हो जाता है और वह अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन कर सकता है ।
>
> 7. अब जो प्रश्न इस न्यायालय द्वारा विचारणार्थ शेष रह जाता है, यह है कि अधिवास प्रमाणपत्र जारी किए जाने के लिए कौन-कौन से दस्तावेज अपेक्षित हैं ? प्रथमतः, इस बात का विनिर्धारण किए जाने के लिए कि क्या कोई व्यक्ति यहां पर विगत पांच वर्षों से रह रहा है, उपायुक्त कार्यालय को संबद्ध पुलिस अधीक्षक से सूचना प्राप्त करनी पड़ती है और सत्यापन कराना पड़ता है और संबद्ध पुलिस अधीक्षक को अपनी रिपोर्ट तीन दिनों के भीतर प्रस्तुत कर देनी चाहिए । द्वितीयतः, पुलिस अधीक्षक से रिपोर्ट मंगाए जाने के अतिरिक्त यदि किसी व्यक्ति के पास कोई अन्य शैक्षणिक अर्हता प्रमाणपत्र है या बिजली का बिल है या निवास स्थान के स्वामी द्वारा दिया गया कोई प्रमाणपत्र है, यदि वह किराएदार है, तो वह भी मांगा जा सकता है किन्तु यह दस्तावेज आवश्यक नहीं होंगे । प्राथमिक रूप से, कोई

---

[1] (2017) 1 एम. जे. 128.

अधिवास प्रमाणपत्र संबद्ध जिला के पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर जारी किया जाना चाहिए । जब कभी भी कोई व्यक्ति अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन करता है, तो संबद्ध उपायुक्त और पुलिस अधीक्षक को निर्देशित किया जाता है कि वे देंखे कि इसमें कोई अड़चन न हो और आवेदक को भिखारी की भांति दौड़ना न पड़े । पुलिस अधीक्षक को अपनी रिपोर्ट प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किए जाने की तारीख से तीन दिनों के भीतर प्रस्तुत कर देनी चाहिए और तत्पश्चात् उपायुक्त का कार्यालय तीन दिनों के भीतर अधिवास प्रमाणपत्र प्रदान कर देगा, जिसका अर्थ यह है कि सम्पूर्ण कार्यवाही एक सप्ताह के भीतर पूर्ण हो जानी चाहिए । यदि इस प्रक्रिया का कोई अतिक्रमण होता है, तो यह न्यायालय की अवमानना माना जाएगा । तथापि, यदि आवेदक की पृष्ठभूमि आपराधिक है, तो अधिवास प्रमाणपत्र दांडिक न्यायालय के अंतिम आदेश के अध्यधीन रहते हुए अस्वीकृत कर दिया जाएगा ।"

12. अब मैं उन निर्णयों का परिशीलन करूंगा जिनका अवलंब मेघालय सरकार के विद्वान् महाधिवक्ता द्वारा लिया गया है, जिनको नीचे प्रत्युत्तपादित किया गया है :–

(i) माननीय उच्चतम न्यायालय ने योगेश भारद्वाज **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [(1990) 3 एस. सी. सी. 355] वाले मामले के पैरा 9 में यह अभिकथित किया –

"9. अधिवास, जो निजी अन्तर्राष्ट्रीय विधि का विषय है या विधि टकराव की संकल्पना पर आधारित है, ऐसे मामलों में जहां विदेशी तत्व अन्तर्वलित है, किसी व्यक्ति की पहचान किसी ऐसे अधिक्षेत्र के संबंध में करता है जो विधि की किसी एकल प्रणाली द्वारा शासित है और जिसको उसकी निजी विधि माना जाता है । किसी व्यक्ति का अधिवास किसी ऐसे देश में माना जाता है, जिसके बाबत यह उपधारणा की जाती है कि वहीं पर उसका स्थायी गृह है । उसका अधिवास सम्पूर्ण देश के संबंध में भी हो सकता है यदि वह देश विधि के सामान्य नियमों द्वारा शासित होता हो, न कि विधि के सामान्य नियम उस देश के किसी एक भाग तक सीमित हों । कोई भी व्यक्ति बिना अधिवास के नहीं हो सकता और किसी के दो अधिवास नहीं हो

सकते ।"

उक्त निर्णय को मात्र पढ़ने से ही यह बात समझ में आ जाती है कि कोई भी व्यक्ति बिना अधिवास के नहीं हो सकता और किसी के दो अधिवास नहीं हो सकते ।

(ii) माननीय उच्चतम न्यायालय ने डी. पी. जोशी **बनाम** मध्य भारत और एक अन्य [1955] 1 एस. सी. आर. 1215 = ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 334 वाले मामले के पैरा 5, 6, 7, 8 और 11 में अभिनिर्धारित किया है कि –

> "5. अब याची की ओर से उपस्थित श्री एन. सी. चटर्जी की दलील यह है कि यह नियम अनुच्छेद 14 और 15(1) के अतिलंघन में है, इसलिए इस नियम को असंवैधानिक और शून्य के रूप में समाप्त कर दिया जाना चाहिए । अनुच्छेद 15(1) में अधिकथित हैं –
>
> > 'राज्य केवल धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्मस्थान या उनमें से किसी आधार पर किसी नागरिक के विरुद्ध पक्षपात नहीं करेगा ।'

याची की दलील यह है कि वह नियम, जिसको चुनौती दी गई है, उन छात्रों, जो मध्य भारत से संबंधित नहीं हैं, पर प्रतिव्यक्ति शुल्क अधिरोपित करता है और दूसरी तरफ इस शुल्क से मध्य भारत के छात्रों को छूट प्रदान करता है, जन्म स्थान के आधार पर पक्षपात करता है और यह नियम अनुच्छेद 15(1) का अतिक्रमणकारी है । उनकी इस दलील में चाहे जो भी बल रहा हो, यदि उस नियम के संबंध में प्रश्न उद्‌भूत हुआ जो तब विद्यमान था, तो जब राज्य ने प्रशासन अपने हाथ में लिया तब नियम को 1952 में उपांतरित किया गया और उसी उपांतरित नियम से हम इस याचिका में संबद्ध है । उपांतरित नियम को स्पष्टतः अनुच्छेद 15(1) के उल्लंघनकारी होने के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती । प्रतिव्यक्ति शुल्क से छूट के लिए आधार, जैसा कि उस नियम में अधिकथित है, मध्य भारत राज्य में निवास है । निवास और जन्मस्थान दो भिन्न संकल्पनाएं हैं जिनके विधि और तथ्य के आधार पर दो भिन्न अर्थ होते हैं और जब अनुच्छेद 15(1) जन्मस्थान के आधार पर पक्षपात को प्रतिषिद्ध करता

है तो इसको निवास स्थान के आधार पर पक्षपात को प्रतिषिद्ध करने वाले उपबंध के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता । यह बिल्कुल भी विवादित नहीं है । हमारे समक्ष जो दलील दी गई है, यह है कि यद्यपि यह नियम राज्य के भीतर निवास स्थान के आधार पर छूट प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ उपबंध करता है, इस नियम के अधीन सद्भावी रूप से निवास स्थान की परिभाषा दर्शित करती है कि यह छूट वास्तव में जन्मस्थान पर आधारित है । यह नियम, जिसमें अधिवास के संबंध में 'निवास' को परिभाषित किया गया है, के खंड (क) और (ख) पर अत्यधिक बल दिया गया है और यह दलील दी गई है कि मूल अधिवास, जैसा कि नियमों में शब्दांकित किया गया है, का सारतः अर्थ केवल जन्मस्थान हो सकता है और इसलिए अधिवास पर आधारित छूट वास्तव में उपनाम जन्मस्थान पर आधारित छूट है । तथापि, यह विधिक स्थिति सही नहीं है । किसी व्यक्ति के अधिवास का अर्थ उसका स्थायी गृह होता है । व्हिकर **बनाम** ह्यूम वाले मामले में लार्ड क्रेनवर्थ ने मताभिव्यक्ति की कि 'अधिवास का अर्थ होता है स्थायी गृह और यदि इस बात को नहीं समझा जाता, तो कोई भी उदाहरण इसको बोधगम्य बनाने में सहायता नहीं कर सकता ?' किसी व्यक्ति के उत्पत्ति स्थान के अधिवास का अर्थ होता है 'उसके जन्म के समय उसके द्वारा प्राप्त किया गया अधिवास प्रमाणपत्र' (कनफ्लिक्ट आफ ला पर डाइसी, छठा संस्करण, पृष्ठ 87) । तत्पश्चात् विद्वान् लेखन ने पृष्ठ 88 पर यह मताभिव्यक्ति की –

> 'यद्यपि उत्पत्ति स्थान का अधिवास जन्म के समय प्राप्त हो जाता है, इसके बाबत उस देश को नहीं समझा जाना चाहिए जिसमें शिशु का जन्म हुआ या उस देश को नहीं समझा जाना चाहिए जिसमें उसके पिता-माता निवास कर रहे हैं या उस देश को नहीं समझा जाना चाहिए जिससे उसके पिता, नस्ल या राजभक्ति द्वारा संबंधित है या उस देश को नहीं समझा जा सकता जिसका शिशु नागरिक है' ।

सोमरविले **बनाम** सोमरविले वाले मामले में मास्टर आफ रोल्स ने मताभिव्यक्ति की –

> 'मैं जन्मस्थान के बजाय उत्पत्ति स्थान के अधिवास की

बात करता हूं । मुझे ऐसी कोई निर्णयज विधि नहीं मिली जो उत्तराधिकार के प्रयोजनार्थ जन्मस्थान को कोई महत्व देती हो । यदि किसी अंग्रेज के पुत्र का जन्म यात्रा के दौरान हो जाता है, तो उसका अधिवास स्थान उसके पिता के अधिवास का स्थान ही होगा' ।

6. श्री एन. सी. चटर्जी ने दलील दी कि उत्पत्ति स्थान के आधार पर अधिवास को बहुधा जन्मस्थान का अधिवास कहा जाता था और उन्होंने हमारा ध्यान विनान्स **बनाम** अटार्नी जनरल वाले मामले में लार्ड मेकनेघटन द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों की ओर आकर्षित किया । किन्तु इस मामले में बुद्धिमान लार्ड ने यह कहा है कि शब्दों 'जन्मस्थान के आधार पर अधिवास' का प्रयोग निश्चित रूप से सटीक नहीं था । इन सब बातों के बावजूद जिस बात का उल्लेख किया जाना चाहिए, यह है कि क्या अभिव्यक्ति 'उत्पत्ति स्थान का अधिवास' या 'जन्मस्थान का अधिवास' का प्रयोग किया गया है, इसमें जो संकल्पना अन्तर्वलित है, वह शब्दों 'जन्मस्थान' से कुछ भिन्न सूचित करती है । और यदि 'जन्मस्थान का अधिवास' और 'जन्मस्थान' को पर्यायवाची नहीं माना जा सकता, तो जन्मस्थान के आधार पर पक्षपात के विरुद्ध अनुच्छेद 15(1) में अधिनियमित प्रतिषेध अधिवास पर आधारित पक्षपात पर लागू नहीं हो सकता ।

7. उन्होंने यह दलील दी कि संविधान के अन्तर्गत सम्पूर्ण भारत के लिए केवल एक नागरिकता हो सकती है और यह नागरिकता उस संकल्पना के विपरीत होगी कि राज्य अपने अधिक्षेत्र के भीतर रहकर अधिवास पर आधारित विधि बना सकते हैं किन्तु नागरिकता और अधिवास दो भिन्न संकल्पनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं । नागरिकता किसी व्यक्ति की राजनैतिक हैसियत के संदर्भ में होती है और अधिवास उसके सिविल अधिकारों के संबंध में होता है । इस विषय पर विधि का एक उत्कृष्ट कथन लार्ड वेस्टबरी ने उदनी बनाम उदनी वाले मामले में दिया है । इस मामले में उन्होंने यह मताभिव्यक्ति की –

"इंग्लैड की विधि और लगभग सभी सभ्य देशों की विधि प्रत्येक व्यक्ति को उनके व्यक्तिगत जन्म से दो भिन्न विधिक

हैसियत या दशाओं की मान्यता प्रदान करती है ; एक जिसके आधार पर वह किसी विशिष्ट देश का नागरिक बन जाता है और राष्ट्रीय धर्म के गठबंधन द्वारा बंध जाता है और जिसको उसकी राजनैतिक हैसियत कहा जा सकता है और दूसरा, जिसके आधार पर वह किसी विशिष्ट देश के नागरिक की हैसियत प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार उसको कुछ नगरपालिका संबंधी अधिकार मिल जाते हैं और कतिपय बाध्यताओं के अधीन रहते हुए जिसका पश्चात्वर्ती स्वरूप सिविल हैसियत होता है या व्यक्ति की दशा होता है और जो राजनैतिक हैसियत से सर्वथा भिन्न होता है । राजनैतिक हैसियत विभिन्न देशों में विभिन्न विधियों पर आधारित होती है जबकि सिविल हैसियत वैश्विक रूप से एकल सिद्धांत अर्थात् अधिवास द्वारा शासित होती है, जो कि सिविल हैसियत विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ विधि द्वारा स्थापित मानदंड है । इसी आधार पर विधि किसी पक्ष के व्यक्तिगत आधार अर्थात् उसकी बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक हैसियत, उसके विवाह, उत्तराधिकार, वसीयती या निर्वसीयती हैसियत का विनिर्धारण करती है ।"

इस प्रश्न पर विचार करते हुए डाइसी ने पृष्ठ 94 पर कहा है –

'वास्तव में एक समय-बिन्दु पर अधिवास और राष्ट्रीयता के विचारों के भ्रम के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि कोई व्यक्ति अमेरिका का नागरिक बनने के प्रयोजनार्थ कुछ किए बिना अपना अधिवास परिवर्तित नहीं कर सकता, उदाहरणार्थ इंग्लैंड से कैलिफोर्निया । जैसा कि कहा गया है, 'उस पर अभिप्राय चाहते हैं और उनके लिए' । किन्तु अब इस सिद्धांत को उच्चतम प्राधिकार द्वारा त्रुटिपूर्ण घोषित किया जा चुका है ।'

विनान्स **बनाम** अटार्नी जनरल वाले मामले में लार्ड लिंडले ने इस संबंध में मताभिव्यक्ति भी की है । हाल्सबरी का ला आफ इंग्लैंड, खंड-6 में इस विधि को इसी प्रकार से पृष्ठ 198 के पैरा 242 पर अभिकथित किया गया है –

'इंग्लिश विधि ऐसे सभी प्रश्नों को विनिर्धारित करती है जिनमें वह अधिवास के परीक्षण को व्यक्तिगत विधि के क्रियान्वयन द्वारा स्वीकार करती है । इस प्रयोजनार्थ वह सिविल सोसाइटियों में सभ्य संसार के संगठन, जिसमें वे सभी व्यक्ति समाविष्ट हैं जो किसी अधिक्षेत्र में निवास करते हैं और जो विधि की किसी प्रणाली के अन्तर्गत है, को मान्यता प्रदान करती है, न कि राजनैतिक सोसाइटियों या राज्यों में उनके संगठन को, जिनमें से प्रत्येक किसी एकल विधिक प्रणाली में विद्यमान हो सकता है या अपनी सार्वभौमिकता के अन्तर्गत अनेक प्रणालियों को एकीकृत कर सकता है ।'

संविधान का अनुच्छेद 5, जो नागरिकता को परिभाषित करता है, स्वयमेव इसी आधार पर अग्रसर होता है कि यह अधिवास से भिन्न है क्योंकि इस अनुच्छेद के अधीन अधिवास अपने आप में किसी व्यक्ति को किसी देश की नागरिकता की हैसियत प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं है ।

8. एक अन्य गंभीर प्रश्न यह है कि चूंकि विधि केवल किसी देश के अधिवास को मान्यता प्रदान करती है और न कि उस देश के भीतर स्थित किसी विशिष्ट क्षेत्र को, क्या ऐसी कोई बात हो सकती है जैसे कि भारत के अधिवास के अतिरिक्त मध्य भारत का अधिवास । इस प्रश्न का उत्तर देते हुए हमको इस बात का परीक्षण करना चाहिए कि विधि की दृष्टि में शब्द 'अधिवास' का क्या अर्थ है । जब हम किसी व्यक्ति के बारे में बात करते हैं कि वह किसी विशिष्ट देश का अधिवासी है, तो हमारा आशय यह होता है कि कतिपय मामलों में जैसे कि वह उत्तराधिकार, अल्पसंख्यक हैसियत और विवाह इत्यादि के मामलों में उस देश की विधि द्वारा शासित है । अधिवास विधि की प्रणाली, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति शासित होता है, को निर्दिष्ट करता है और जब वह किसी देश के अधिवास के बारे में बात करता है तो वह यह उपधारणा करता है कि विधि की वही प्रणाली सम्पूर्ण देश में अभिभावी होती है । किन्तु यह तब घटित होना चाहिए जब सम्पूर्ण देश में उत्तराधिकार और विवाह से संबंधित विधियां समान हों और क्या देश के विभिन्न भागों में इन विषयों के संबंध में

विभिन्न विधियां हैं । उन मामलों में विधियों के विभिन्न समुच्चय रखने वाला प्रत्येक क्षेत्र अपने आप में एक देश का दर्जा रखेगा । डाइसी ने इसी स्थिति को पृष्ठ 83 पर अधिकथित किया है –

> 'अधिवास के संबंध में नियमों में शुरू से अंत तक अन्तर्गत अनुध्यात क्षेत्र विधि की एकल प्रणाली के अन्तर्गत आने वाला कोई देश या राज्यक्षेत्र होता है । इसका कारण यह है कि इस शोधनिबंध का उद्देश्य, जहां तक इसका संबंध अधिवास से है, यह दर्शित करना है कि किस प्रकार किसी व्यक्ति के अधिकार विधि की एकल प्रणाली द्वारा शासित राज्यक्षेत्र के भीतर विधिक उसको विधिक घर या अधिवास होने के कारण प्रभावित होते हैं, अर्थात् किसी विशेष देश के भीतर न कि उस देश के भीतर किसी अन्य क्षेत्र में । यदि वास्तव में ऐसा होता है कि देश का एक भाग सामान्यतः विधि की एक प्रणाली द्वारा शासित है, किन्तु वह अनेक मामलों में विधि के विशेष नियमों के अध्यधीन है, तो इस बात को विनिर्धारित किया जाना आवश्यक होगा कि क्या डी नामक व्यक्ति का अधिवास ऐसे किसी विशिष्ट भाग में था अर्थात् संयुक्त राष्ट्र में कैलिफोर्निया राज्य में ; किन्तु इस मामले में देश का ऐसा भाग उस पृथक् देश का उसी सीमा तक भाग इस अर्थ में होगा जिसमें इस शब्द को नियमों के अन्तर्गत योजित किया गया है ।'

हाल्सबरी के ला आफ इंग्लैड, खंड-6, पृष्ठ 246, पैरा 249 में अधिकथित विधि के निम्नलिखित कथन को भी उद्धृत किया जाता है –

> '..... देश के उस भाग में अधिवास अर्जित किया जाता है जहां व्यक्ति निवास करता है ।'

11. प्रत्यर्थियों की ओर से यह दलील भी दी गई कि नियमों में अधिकथित शब्द 'अधिवास' का अर्थान्वयन यंत्रवत् विधि भाव में नहीं किया जाना चाहिए किन्तु इसका अर्थान्वयन लोकप्रिय भाव, जिसका कि अर्थ होता है 'निवास' में किया जाना चाहिए और व्हार्टन के ला लैक्सीकोन, 14वां संस्करण, पृष्ठ 344 के निम्नलिखित लेखांश को उपरोक्त अर्थान्वयन के समर्थन में उद्धृत किया गया –

'सामान्य रूप से स्वीकार्यता के प्रयोजनार्थ शब्द 'अधिवास' का आशय उस स्थान से होता है जहां कोई व्यक्ति निवास करता है या जहां पर उसका घर है । इस भाव में वह स्थान जहां कोई व्यक्ति वास्तव में निवास करता है, जहां का वह निवासी है या जहां पर वह सामान्य रूप से निवास करता है, को अनेक अवसरों पर उसका अधिवास कहा जाता है' ।

मैकमुलन बनाम वेड्सवर्थ वाले मामले में न्यायिक समिति द्वारा यह मताभिव्यक्ति की गई कि '(निचले कनाडा के सिविल कोड के) अनुच्छेद 63 में शब्द 'अधिवास' का प्रयोग निवास के भाव में किया गया है और यह अनुच्छेद अन्तर्राष्ट्रीय अधिवास को निर्दिष्ट नहीं करता' । जिस बात पर विचार किया जाना चाहिए, यह है कि क्या वर्तमान संदर्भ में शब्द 'अधिवास' का प्रयोग निवास के भाव में किया गया है । प्रति व्यक्ति शुल्क के संदाय और उससे छूट के लिए उपबंधित किए जाने की अपेक्षा करने वाला नियम मात्र राज्य के सद्भावी निवासियों को निर्दिष्ट करता है । इस नियम में अधिवास का कोई निर्देश नहीं है, किन्तु स्पष्टीकरण में यह उपबंधित किया गया है, खंड (क) और (ख) अधिवास को निर्दिष्ट करते हैं और वे 'सद्भावी निवास' की परिभाषा के भाग के रूप में उद्भूत होते हैं । कार्पस ज्यूरिस सिकंडम, खंड-28, पृष्ठ 5 पर यह अधिकथित है –

'शब्द 'सद्भावी निवास' का अर्थ है अधिवास के आशय के साथ निवास' ।

अतः, प्रत्यर्थी की इस दलील में पर्याप्त बल है कि जब नियम बनाने वाले प्राधिकारियों ने खंड (क) और (ख) में अधिवास को निर्दिष्ट किया, तो उनका वास्तव में चिंतन निवास के बारे में था । इस बात को भी ध्यान में रखते हुए, यह दलील विफल हो जाती है कि यह नियम अनुच्छेद 15(1) के असंगत है ।

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त मताभिव्यक्ति से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि किसी व्यक्ति को अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन प्रस्तुत करने का प्रत्येक को अधिकार होता है ।

(iii) माननीय उच्चतम न्यायालय ने डा. प्रदीप जैन और अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य (1984) 3 एस. सी. सी. 654 वाले

मामले के पैरा 8 में यह अभिनिर्धारित किया –

'8. अब संविधान के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान एकमात्र अधिवास को मान्यता प्रदान करता है अर्थात् भारत में अधिवास को । इस बिन्दु पर संविधान का अनुच्छेद 5 स्पष्ट और सुनिश्चित है ।' इसके अतिरिक्त यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि भारत राष्ट्र शब्द के परम्परागत भाव में एक संघीय राष्ट्र नहीं है । यह प्रभुतासंपन्न राज्यों जो संघीय राज्यों के संबंध में उनकी प्रभुतासंपन्नता के किसी भाग का समर्पण करने के द्वारा एक संघ सृजित किए जाने के प्रयोजनार्थ एकसाथ एकत्रित हो गए हों, का कोई समझौता नहीं है । इसमें असंदिग्ध रूप से कतिपय संघीय लक्षण समाहित हैं किन्तु फिर भी यह संघीय राष्ट्र नहीं है और इस राष्ट्र की केवल एक नागरिकता है जिसका नाम है भारत की नागरिकता । इसकी एकल एकीकृत विधिक प्रणाली है जो सम्पूर्ण देश पर लागू होती है । अतः यह कहना संभव नहीं है कि भारत संघ का भाग बने हुए प्रत्येक राज्य में विधि की कोई सुभिन्न और पृथक् प्रणाली लागू होती है । विधिक प्रणाली जो भारत के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र में लागू होती है, पदानुक्रम में सर्वोच्च स्थान पर आसीन भारत की उच्चतम न्यायालय को समाहित करने वाली एकल अविभाज्य प्रणाली है, जो सम्पूर्ण देश के लिए विधि अधिकथित करती है । यह सत्य है कि संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 में उल्लिखित विषयों के संबंध में राज्यों को संसद् की अध्यारोही शक्ति के अध्यधीन रहते हुए विधियां अधिनियमित करने की शक्ति प्राप्त है, राज्य संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 में उल्लिखित विषयों के संबंध में भी विधियां अधिनियमित कर सकते हैं किन्तु विधिक प्रणाली जिसके निदेश के अन्तर्गत राज्यों द्वारा इस प्रकार की विधियां अधिनियमित की जाती हैं, एकल विधिक प्रणाली है जिसको वास्तव में भारतीय विधिक प्रणाली के रूप में वर्णित किया जाता है । यह सुझाव दिया जाना बेतुका होगा कि विधिक प्रणाली एक राज्य से दूसरे राज्य में परिवर्तित हो जाती है या किसी राज्य की विधिक प्रणाली भारत संघ की विधिक प्रणाली से मात्र इस

कारणवश कि राज्य उनकी विधायी सक्षमता के अन्तर्गत आने वाले विषयों के संबंध में विधियां बनाने की शक्तियां रखते हैं, भिन्न है । 'अधिवास' की संकल्पना नगरपालिका विधियों, चाहे उनको भारत संघ द्वारा अधिनियमित किया गया हो या राज्य द्वारा, के उपयोजन के संबंध में, की कोई सुसंगतता नहीं है । इसलिए हमारे विचार में यह कहा जाना सही होगा कि भारत का कोई नागरिक, जो एक राज्य से दूसरे राज्य में अधिवासित होता है, भारत संघ का भाग बना रहता है । जो अधिवास उसको प्राप्त होता है वह मात्र एक अधिवास है जिसका नाम है भारत के राज्य क्षेत्र में अधिवास । जब कोई व्यक्ति, जो स्थायी रूप से एक राज्य का निवासी है किसी अन्य राज्य में स्थायी रूप से या अनिश्चितकाल के लिए निवास करने के आशय से जाता है, तो उसका अधिवास परिवर्तित नहीं होता ; वह रुचि द्वारा नया अधिवास अर्जित नहीं करता । उसका अधिवास वही बना रहता है अर्थात् भारतीय अधिवास । हम इसको भारत की एकता और अखंडता की संकल्पना के प्रयोजनार्थ अत्यधिक हानिकारक मानते हैं । यह सत्य है और हम राज्य सरकारों की ओर से दी गई दलीलों के साथ पूर्णतया सहमत हैं कि कुछ राज्य सरकारों के नियमों, जो उन राज्यों के राज्य क्षेत्र के भीतर स्थित चिकित्सीय महाविद्यालयों में प्रवेश के प्रयोजनार्थ अधिवासीय अर्हता विहित करते हैं, में शब्द 'अधिवास' का प्रयोग यंत्रवत् विधिक भाव में नहीं किया गया है बल्कि प्रचलित भाव में किया गया है जिसका अर्थ है निवास और जो स्थायी रूप से या अनिश्चितकाल के लिए निवास करने के आशय के विचार को संप्रेक्षित करने के लिए आशयित है । वास्तव में यही वो भाव है जिसमें शब्द 'अधिवास' को डी. पी. जोशी वाले मामले में इस न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा मध्य भारत राज्य के किसी चिकित्सीय महाविद्यालय में प्रवेश के लिए प्रति व्यक्ति शुल्क विहित करने वाले नियम का अर्थान्वयन करते हुए समझा गया और इसी भाव में शब्द 'अधिवास' को वसुन्दरा बनाम मैसूर राज्य वाले मामले में मैसूर राज्य द्वारा अधिनियमित चयन नियमों के नियम 3 में समझा गया था । इसलिए हम

बंधनरहित भाव में कुछ राज्यों द्वारा स्थायी निवास के प्रयोजनार्थ विरचित चिकित्सीय महाविद्यालयों में प्रवेश को विनियमित करने वाले नियमों में प्रयुक्त शब्द 'अधिवास' का निवर्चन करेंगे न कि यंत्रवत् भाव में जिसमें इसको निजी अन्तर्राष्ट्रीय विधि में प्रयोग किया जाता है । किन्तु इन सब बातों के बावजूद हम उन राज्यों, जो भारत संघ के भाग हैं, के संदर्भ में शब्द 'अधिवास' के प्रयोग के विरुद्ध चेतावनी देना चाहते हैं क्योंकि यह एक ऐसा शब्द है जो स्वतंत्र राज्य की विफल संकल्पना को बढ़ावा दे सकता है और निष्क्रिय प्रभुसतासम्पन मनोवेगों को अतिसूक्ष्म और कपटपूर्ण तरीके से बढ़ावा दे सकता है । हम समझते हैं कि यह खतरनाक होगा कि किसी ऐसी विधिक संकल्पना का प्रयोग किया जाए जो किसी ऐसे भाव को संप्रेक्षित करने वाली हों जो ऐसी विधिक संकल्पना से भिन्न हो और जो वर्षों से प्रयोग होने वाली विधिक रूढ़ियों के साथ सहबद्ध रही हो । जब हम किसी ऐसे शब्द का प्रयोग करते हैं, जो किसी भिन्न संकल्पना या विचार को संप्रेक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी संकल्पना या विचार का प्रतिनिधित्व करने वाला हो, तो हमारे विवेक के लिए यह आसान हो जाता है कि वह ऐसी किसी उपधारणा पर विश्वास करे कि शाब्दिक पहचान के साथ समस्त अनुक्रमों में अर्थ की पहचान संलग्न हो । अधिवास की संकल्पना, यदि इसका प्रयोग उसके विधिसम्मत प्रयोजन के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन से किया जाता है, तो इससे घातक विकिरण उत्पन्न होंगे जो दीर्घकाल में देश की एकता और अखंडता को तोड़ सकते हैं । अतः हम राज्य सरकारों से दृढ़तापूर्वक अपील करते हैं कि वे उनके शैक्षणिक संस्थाओं, विशेष रूप से चिकित्सा महाविद्यालयों में प्रवेश को विनियमित करने वाले नियमों से अभिव्यक्ति 'अधिवास' के गलत प्रयोग को रोकें और उनमें प्रवेश के लिए अर्हता की शर्त के रूप में अधिवासीय अपेक्षा को पुरःस्थापित करने और उसको बनाए रखने से विरत रहें ।'

उपरोक्त निर्णय से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किसी विशिष्ट राज्य में निवास करने का किसी व्यक्ति का आशय स्थापित

किए जाने की आवश्यकता है ।"

13. मैंने मेघालय सरकार के राजनैतिक विभाग द्वारा निर्गत पत्र जिसका संदर्भ संख्या पी. ओ. एल. 97/74/174, तारीख शिलांग 10 जून (वर्ष स्पष्ट नहीं) का परिशीलन किया है । उक्त पत्र के पैरा 2 और 3 को नीचे प्रत्युत्तपादित किया गया है :–

"2. स्थायी निवास प्रमाणपत्र जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी व्यक्ति, जिससे किसी जिले का स्थायी निवासी होने की उपधारणा की जाती है, यदि वह उस जिले में न्यूनतम 12 वर्ष की अवधि से या तो अपने स्वयं के घर में या किसी किराए के घर में निवास कर रहा है और उसने उस जिले में स्थायी रूप से निवास करने का निर्णय ले लिया है । मात्र इस कारणवश कि उसने उस जिले में संपत्ति अर्जित कर ली है, वह व्यक्ति स्थायी निवास प्रमाणपत्र का हकदार नहीं हो जाएगा जब तक कि वह उस जिले में वास्तव में और निरन्तर रूप से निवास न कर रहा हो । निरन्तर रूप से निवास का तथ्य को पारिस्थितिक साक्ष्य से साबित किया जा सकता है जैसे कि बिजली के बिलों का संदाय, नगरपालिका या स्थानीय समितियों के कर, गृह किराए के संदाय की रसीदें, पंचायत के सरपंच का प्रमाणपत्र इत्यादि और इसके अतिरिक्त सामान्य प्रशासनिक माध्यमों से अभिप्राप्त सूचनाएं ।

3. यद्यपि किसी व्यक्ति को किसी जिले का स्थायी निवासी मात्र इस कारणवश नहीं माना जाएगा कि वह उस जिले में अपनी सिविल सेवा या सेना की सेवा या किसी वृत्ति या पेशे के प्रयोजनार्थ रहा है फिर भी वह व्यक्ति स्थायी निवास प्रमाणपत्र का हकदार होगा यदि (1) वह उस जिले में अपनी सिविल सेवा या सेना की सेवा के संबंध में निरन्तर रूप से कम से कम 12 वर्ष की अवधि से निवास कर रहा है और उसने उस जिले में अपनी सेवानिवृत्ति के पश्चात् स्थायी रूप से निवास करने का निर्णय ले लिया है या (2) वह उस जिले में निरन्तर रूप से कम से 12 वर्ष की अवधि से किसी पेशे या वृत्ति या निवेश के प्रयोजनार्थ निवास कर रहा है, तो सुरक्षित रूप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसका आशय उस जिले में स्थायी रूप से निवास करने का है और (3) मेघालय सरकार या

अर्धसरकारी निगमों या स्वायत्तशासी निकायों के मामलों के संबंध में सेवाएं प्रदान करने वाले सभी व्यक्ति, जो संविदा, आकस्मिक कार्य या ..... इत्यादि के आधार पर सेवारत नहीं हैं के आधार पर सेवारत नहीं हैं और जो नियमित रूप से नियोजन में हैं, भले ही स्थायी रूप से और जिनके मामलों में सुरक्षित रूप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह मेघालय राज्य में स्थायी रूप से निवास करेंगे ।"

उक्त अधिसूचना के पैरा 2 और 3 का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति के बारे में व्यक्तिगत निवास प्रमाणपत्र जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ यह उपधारणा की जा सकती है कि वह स्थायी निवासी है यदि वह या तो अपने स्वयं के घर में या किराए के घर में कम से कम 12 वर्ष की अवधि से निरन्तर रूप से निवास कर रहा है और उसने स्थायी रूप से निवास करने का निर्णय ले लिया है । उक्त अधिसूचना जिसकी संख्या पी. ओ. एल. 422/76/55, तारीख शिलांग 13 जनवरी, 1995 और अधिसूचना संख्या पी. ओ. एल. 97/74/174, तारीख शिलांग 10 जून (वर्ष स्पष्ट नहीं) का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों ही अधिसूचनाएं एक दूसरे के खंडन में हैं और माननीय उच्चतम न्यायालय और साथ ही इस न्यायालय द्वारा **रब्बे आलम** बनाम **मेघालय राज्य और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में पारित निर्णय में जारी किए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों के सामंजस्य में नहीं है । इस मामले के पैरा 6 और 7 में उस प्रक्रिया को अधिकथित किया गया है जिसका पालन अधिवास प्रमाणपत्र प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और साथ ही इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय, जिसको ऊपर उद्धृत किया गया है, के विश्लेषण के पश्चात् मेरी सुविचारित राय यह है कि मेघालय राज्य में स्थायी रूप से निवास करने वाला या कम से कम 5 वर्ष निवास करने वाले किसी व्यक्ति को अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन करने का अधिकार है और उसका अधिवास प्रमाणपत्र इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के पैरा 6 और 7 में की गई मताभिव्यक्ति के अनुसार जारी किया जाएगा । तथापि, ऐसे व्यक्ति के मामले में छूट प्रदान की जाएगी जो राज्य में स्थानांतरण पर सेवाएं प्रदान करने के लिए आता है । इस मामले में 5 वर्षों की अवधि पर विचार नहीं

किया जाएगा और वह व्यक्ति 5 वर्ष की अवधि के पहले भी अधिवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन प्रस्तुत कर सकता है । मैं स्थायी निवास प्रमाणपत्र के मामले में यह स्पष्ट करता हूं कि मेघालय राज्य में कम से कम विगत 12 वर्ष की अवधि से स्थायी रूप से निवास करने वाला व्यक्ति, जिसका आशय यहां पर स्थायी रूप से निवास करने का है, को बिना कोई प्रश्न पूछे स्थायी निवास प्रमाणपत्र प्रदान किया जाना चाहिए । फिर भी यदि कोई संदेह उत्पन्न होता है तो उपायुक्त यह विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि वह इस राज्य में कितनी अवधि से रह रहा है, पुलिस सत्यापन के लिए कह सकता है और स्थायी निवास प्रमाणपत्र केवल शैक्षिक प्रयोजनों के लिए जारी किया जा सकता है किन्तु ऐसा स्थायी निवास प्रमाणपत्र समस्त प्रयोजनों के लिए लागू होगा । मैं इस बात को स्पष्ट करता हूं कि अधिवास प्रमाणपत्र या स्थायी निवास प्रमाणपत्र का उद्देश्य केवल सेना में सम्मिलित होने या पैरामिलिट्री बलों या शैक्षिक प्रयोजनों के लिए नहीं है बल्कि यह समस्त प्रयोजनों के लिए प्रदान किया जाता है ।

सरकार द्वारा प्रतिरक्षा में फाइल किए गए शपथपत्र के पैरा 8 के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि यह शपथपत्र भ्रमपूर्ण है और परस्पर विरोधी है चूंकि सरकार ऐसा अधिवास प्रमाणपत्र, जो विधि की दृष्टि में मान्य ठहराए जाने योग्य न हो, को जारी किए जाने के पक्ष में नहीं है ।

14. उन कारणों जिन पर ऊपर चर्चा की गई है में अधिसूचना संख्या पी. ओ. एल. 422/76/55, तारीख शिलांग 13 जनवरी, 1995 और अधिसूचना संख्या पी. ओ. एल. 97/74/174, तारीख शिलांग 10 जून (वर्ष स्पष्ट नहीं) से सहमत नहीं हूं जिनको एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और मेघालय सरकार को निर्देशित किया जाता है कि वे अधिवास प्रमाणपत्र और व्यक्तिगत निवास प्रमाणपत्र के संबंध में **रब्बे आलम** बनाम **मेघालय राज्य और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 6 और 7 में इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों का अनुसरण करें ।

इससे पहले कि मैं इस मामले में सुनवाई समाप्त करूं, मैं भारत सरकार के सहायक सालिसिटर जनरल सुश्री ए. पाल से अनुरोध करता हूं और उनको निर्देशित भी करता हूं कि वे इस निर्णय और आदेश की एक प्रति प्राप्त करें और उसको माननीय प्रधानमंत्री, माननीय गृहमंत्री और

माननीय विधि मंत्री को तारीख 11 दिसम्बर, 2018 तक परिशीलनार्थ और आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रदान कर दें ताकि हिन्दुओं, सिखों, जैनियों, बौद्धों, ईसाइयों, पारसियों, खासियों, जैनतियों और गारो, जो पहले ही भारत आ चुके हैं और जिनको पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से अभी आना बाकी है, के हितों की विधि अनुसार रक्षा की जा सके और साथ ही भारतीय मूल के उन सभी लोगों के हितों की रक्षा की जा सके जो विदेशों में रह रहे हैं किन्तु जिनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भारत से संबंधित है, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है और उद्धृत किया गया है । यह न्यायालय प्रत्याशा करती है कि भारत सरकार ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए इस निर्णय का सम्मान करेगी और इस देश और इस देश के लोगों की रक्षा करेगी । तद्नुसार, 2018 की रिट याचिका संख्या 448 मंजूर की जाती है ।

भारत सरकार के सहायक महासालिसिटर को आगे निर्देशित किया जाता है कि वे इस निर्णय की एक प्रति प्राप्त करें । रजिस्ट्री को निर्देशित किया जाता है कि इस निर्णय की एक प्रति मेघालय के महामहिम राज्यपाल और साथ ही माननीय प्रधानमंत्री, माननीय गृह मंत्री, माननीय विधि मंत्री और पश्चिमी बंगाल के माननीय मुख्यमंत्री को तुरन्त विशेष संदेशवाहक द्वारा भेजी जाए ।

15. इन मताभिव्यक्तियों और निर्देशों के साथ मामले का निस्तारण किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

अवि.

हुकमी चन्द मोसून

बनाम

कुशाल चन्द दुग्गड़

तारीख 10 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति आलोक शर्मा

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 65 – द्वितीयक साक्ष्य – किराएदार द्वारा किराएदार और मकान-मालिक के बीच हुए करार की फोटो प्रति साक्ष्य में पेश की जानी – किराएदार द्वारा इस संबंध में कुछ न कहा जाना कि किन परिस्थितियों में पक्षकारों के बीच अभिकथित करार की तात्पर्यित फोटो प्रति साक्ष्य में पेश की गई है – अभिकथित करार में किराएदार के नाम का उल्लेख न होना – किराएदार द्वारा यह सबूत न देना कि वह किस प्रकार से करार से संबद्ध था – द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए फाइल आवेदन में आधारभूत तथ्यों का उल्लेख न होने के कारण ऐसा आवेदन मंजूर नहीं किया जा सकता ।

इस रिट याचिका में तारीख 25 फरवरी, 2017 के उस आदेश को आक्षेपित किया गया है जिसके द्वारा याची-किराएदार द्वारा मैसर्स जे. के. जे. एंड संस ज्वैलर्स तथा प्रत्यर्थी-मकान-मालिक के बीच तारीख 28 जून, 2006 के तात्पर्यित करार के संबंध में द्वितीय साक्ष्य पेश करने के लिए साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन दिए गए आवेदन को खारिज किया गया है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – उपर्युक्त विधिक स्थिति के संदर्भ में जैसा कि विभिन्न निर्णयों से स्पष्ट है, यह साबित होता है कि किराएदार द्वारा फाइल की गई फोटो प्रति के आधार पर तारीख 28 जून, 2006 के करार के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा ठीक ही खारिज किया गया था । उन परिस्थितियों का जिनमें तारीख 28 जून, 2006 के अभिकथित करार की तात्पर्यित फोटो प्रति पेश की गई है, आवेदन में भी उल्लेख नहीं किया गया था । इस बारे में कुछ नहीं कहा गया था कि उस समय मूल दस्तावेज किसके कब्जे में था जब फोटो प्रति बनाई गई थी और यह प्रति कब और किसके द्वारा बनवाई गई थी और अभिकथित मूल दस्तावेज की फोटो प्रति बनाने का क्या प्रयोजन था । यह

उल्लेख करना भी पूर्णतया सुसंगत है कि तारीख 28 जून, 2006 का तात्पर्यित करार जे. के. जे. एंड संस ज्वैलर्स और मकान-मालिक के बीच था और इसमें किराएदार को निर्दिष्ट भी नहीं किया गया था । साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन आवेदन में इस बारे में कुछ नहीं कहा गया था कि किराएदार किस रीति में तात्पर्यित करार से संबद्ध था और यह किन परिस्थितियों में उपर्युक्त जे. के. जे. एंड संस के लिए लाभदायक था, जैसा कि इसके परिशीलन से साबित होता है और तारीख 28 जून, 2006 का करार मकान-मालिक के कब्जे में था जिसने इस बात से इनकार किया था । जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किया गया है कि किराएदार द्वारा साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन रहस्यपूर्ण आवेदन की आकस्मिक प्रकृति के अतिरिक्त यह विलंबित भी था और इसे राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 2001 विशेषतया इसकी धारा 15(5) द्वारा किराएदार की अपेक्षित बेदखली में दस वर्ष के पश्चात् प्रतिपरीक्षा के आधार पर 2006 के बेदखली आवेदन में 2016 में फाइल किया गया था हालांकि प्रत्यक्षतया विरोधी पक्षकार पर याचिका की तामील के 240 दिनों के भीतर फाइल किया गया था । न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि किराएदार द्वारा तारीख 28 जून, 2006 की तात्पर्यित फोटो प्रति के बारे में द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन आवेदन में आधारभूत तथ्यों का उल्लेख नहीं किया गया था । यह अचानक और गुणता के बिना निराशाजनक रूप से पेश किया गया था । अकस्मात द्वितीयक साक्ष्य को पेश करना जैसा कि किराएदार द्वारा अनुरोध किया गया था, न्यायिक प्रशासन में विघ्न डालने के बराबर है जिससे कि विचारण लंबा चले । अभिलेख पर साक्ष्य की सभी रीतियों द्वारा संदेहास्पद वंशावली पेश की गई है जिसके परिणामस्वरूप असाधारण विलंब हुआ है जबकि पहले ही अत्यधिक लंबित मामले हैं और मामला प्रतिकूल जघन-टिप्पण करने का बनता है । न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि ऐसा कुछ भी अनुचित या किसी प्रकार से अवैध नहीं है जिससे कि विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 25 फरवरी, 2017 को पारित आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए आधार बन सके । (पैरा 11 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 4215 =
(2013) 2 एस. सी. सी. 114 :
यू. श्री बनाम **यू. श्री निवास** ; 10

[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 146 = (2010) 9 एस. सी. सी. 712 : **एम. चन्द्रा** बनाम **एम. थंगामुथू और अन्य** ;	6, 8
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1492 : **एच. सिद्दीकी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** बनाम **ए. रामालिंगम** ;	6, 8
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1721 = (2007) 5 एस. सी. सी. 730 : **श्रीमती जे. यशोदा** बनाम **श्रीमती शोभा रानी** ;	3, 6
[1999]	ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1668 : **नवाब सिंह** बनाम **इंद्रजीत कौर** ;	4, 10
[1969]	ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 253 : **श्रीमती बीबी आयशा और अन्य** बनाम **बिहार सूबाई सुन्नी मजलिस औक़ाफ़ और अन्य** ;	4, 10
[1975]	ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1748 = (1975) 4 एस. सी. सी. 664 : **अशोक दुलीचंद** बनाम **माधव लाल दूबे और एक अन्य** ।	6

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की सिविल रिट याचिका सं. 8370.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्री रजत रंजन
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री अशोक मेहता और ओ. पी. मिश्रा

न्यायमूर्ति आलोक शर्मा – इस रिट याचिका में तारीख 25 फरवरी, 2017 के उस आदेश को आक्षेपित किया गया है जिसके द्वारा याची-किराएदार (जिसे आगे संक्षेप में 'किराएदार' कहा गया है) द्वारा मैसर्स जे. के. जे. एंड संस ज्वैलर्स तथा प्रत्यर्थी-मकान-मालिक (जिसे आगे संक्षेप में 'मकान-मालिक' कहा गया है) के बीच तारीख 28 जून, 2006 के तात्पर्यित करार के संबंध में द्वितीय साक्ष्य पेश करने के लिए साक्ष्य

अधिनियम, 1872 की धारा 65 के अधीन दिए गए आवेदन को खारिज किया गया है ।

2. मैंने किराएदार और मकान-मालिक के विद्वान् काउंसेलों को सुना और तारीख 25 फरवरी, 2017 के आदेश का परिशीलन किया ।

3. विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में यह अभिलिखित किया है कि किराएदार द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 11, 12 और 14 के अधीन फाइल किए गए पूर्व आवेदन में मकान-मालिक द्वारा तारीख 28 जून, 2006 के उपर्युक्त करार की विद्यमानता से इनकार किया गया है जिस पर आवेदन तारीख 3 दिसंबर, 2016 के आदेश द्वारा खारिज किया गया था । परिणामतः वह करार जिसकी बाबत द्वितीय साक्ष्य पेश करने की ईप्सा की गई थी, विद्यमान नहीं था । यह उल्लेख किया गया था कि उपर्युक्त के अतिरिक्त 1872 के अधिनियम के अधीन आवेदन भी किसी शपथपत्र द्वारा समर्थित नहीं था । विचारण न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय द्वारा **श्रीमती जे. यशोदा** बनाम **श्रीमती शोभा रानी**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वहां फोटो प्रति को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता जहां फोटो प्रति की मूल प्रति से तुलना किए जाने का सबूत नहीं दिया गया है । विचारण न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि मामले से संबंधित वाद जिसमें वर्ष 2016 में विलंब से आवेदन फाइल किया गया था, वर्ष 2007 से लंबित था और आवेदन उस प्रक्रम पर दिया गया था जब किराएदारी की प्रतिपरीक्षा की जा रही थी । उसका आचरण यह साबित करता है कि आवेदन प्रत्यक्षतया बेदखली याचिका के न्यायनिर्णयन में विलंब करने के प्रयोजन के लिए फाइल किया गया था । न्यायालय द्वारा इस प्रकार अभिनिर्धारित करते हुए 1872 के अधिनियम की धारा 65 के अधीन किराएदार द्वारा फाइल किया गया आवेदन 1,000/- रुपए के खर्चे के साथ खारिज किया गया था ।

4. किराएदार की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री रजत रंजन ने यह दलील दी है कि आक्षेपित आदेश इस तथ्य के कारण दूषित है कि 1872 के अधिनियम की धारा 65 के अधीन दिया गया आवेदन इस निर्देश के साथ खारिज किया गया था कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 11, 12 और 14 के अधीन मकान-मालिक से तारीख 28 जून, 2006 के करार

---

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1721 = (2007) 5 एस. सी. सी. 730.

समन करने के लिए आवेदन का सुसंगत तथ्य पूर्व में खारिज कर दिया गया है । मकान-मालिक करार को छुपाने के बजाय जिसके कारण सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 11, 12 और 14 के अधीन आवेदन खारिज किया गया था, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 का आश्रय ले सकता था । श्री रजत रंजन ने यह दलील दी कि किराएदार का यह विनिर्दिष्ट पक्षकथन था कि तारीख 28 जून, 2006 का विवादित करार मकान-मालिक के कब्जे में था जिसके विरुद्ध दस्तावेज को साबित करने की ईप्सा की गई थी । 1872 के अधिनियम की धारा 65(क) के निबंधनों में यह एक ऐसा उचित मामला था जहां उक्त दस्तावेजों के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य स्वीकार किया जाना चाहिए । श्री रंजन ने उच्चतम न्यायालय द्वारा **नवाब सिंह** बनाम **इंद्रजीत कौर**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विचारण न्यायालय दस्तावेज की सत्यता के संदेह के आधार पर द्वितीयक साक्ष्य को पेश करने के लिए न्यायालय से इजाजत लेने के अनुरोध को खारिज करने में न्यायोचित नहीं था क्योंकि न्यायालय द्वारा दस्तावेज की सत्यता के बारे में विचारण में दस्तावेज को स्वीकार किए जाने के पश्चात् मूल्यांकन किया जाना था । श्री रजत रंजन ने अपनी दलील के समर्थन में **श्रीमती बीबी आयशा और अन्य** बनाम **बिहार सूबाई सुन्नी मजलिस औक़ाफ़ और अन्य**[2] वाले मामले का इस तथ्य के लिए अवलंब लिया है कि जहां कोई दस्तावेज खो जाता है वहां द्वितीय साक्ष्य अनुज्ञेय है । श्री रजत रंजन ने यह भी दलील दी है कि तारीख 28 जून, 2006 के करार का बेदखली आवेदन के उत्तर में निर्देश किया गया था जिसके बारे में मकान-मालिक द्वारा प्रत्युत्तर में विनिर्दिष्ट रूप से इनकार किया गया था । उन्होंने यह दलील दी कि उक्त करार की विद्यमानता पर किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि मकान-मालिक ने सोच-विचार करने के पश्चात् इनकार किया है । अंततः श्री रजत रंजन ने यह दलील दी कि विधि और न्याय के हित में भी आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाना चाहिए और किराएदार को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में तारीख 28 जून, 2006 के करार की फोटो प्रति पेश करने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए ।

5. इसके प्रतिकूल श्री ओ. पी. शर्मा के साथ ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक मेहता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हुए यह दलील दी है

---

[1] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1668.

[2] ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 253.

कि साक्ष्य की विधि यह है कि वादपत्र या उत्तर में या लिखित कथन में उल्लिखित सभी तथ्यों को प्राथमिक साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए । धारा 63 में यथा परिभाषित द्वितीयक साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 में उल्लिखित रीति में एक अपवाद के रूप में पेश किया जा सकता है । श्री अशोक मेहता ने 1872 के अधिनियम की धारा 63(2) की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते हुए यह दलील दी है कि तकनीकी प्रक्रिया द्वारा मूल प्रति से बनाई गई प्रतियां जो स्वतः प्रति की सत्यता को सुनिश्चित करती हों और ऐसी प्रतियों से तुलना की गई प्रतियां द्वितीयक साक्ष्य के रूप में अनुज्ञात की जा सकती हैं । उन्होंने यह दलील दी कि कोई फोटो प्रति दस्तावेजों के इस प्रवर्ग के अन्तर्गत नहीं आती हैं क्योंकि यह प्रति की सत्यता और छेड़छाड़ किए जाने की संभावना को स्वतः सुनिश्चित नहीं कर सकती । इसके अतिरिक्त जहां साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 में यथा परिभाषित द्वितीयक साक्ष्य उपलब्ध है वहां 1872 के अधिनियम की धारा 65 में उल्लिखित शर्तें ऐसे दस्तावेज को स्वीकार किए जाने से पूर्व पूरी की जानी चाहिए । वर्तमान मामले में दोनों ही धाराओं में उल्लिखित शर्तें द्वितीयक साक्ष्य स्वीकार किए जाने से पूर्व पूरी कर दी गई हैं । श्री अशोक मेहता ने यह भी दलील दी है कि किराएदार की प्रतिपरीक्षा के प्रक्रम पर किराएदार का आवेदन स्पष्टतः विलंबित प्रक्रम पर फाइल किया गया था और यह आधारभूत तथ्यों द्वारा भी स्पष्ट नहीं था कि द्वितीयक साक्ष्य तारीख 28 जून, 2006 के तात्पर्यित करार के संबंध में अनुज्ञात किया जा सकता है । यह दलील दी गई है कि आवेदन में इस बारे में कुछ नहीं कहा गया है कि वे क्या परिस्थितियां थीं जिनके अधीन तारीख 28 जून, 2006 का मूल करार जे. के. जे. एंड संस ज्वैलर्स के फायदे के लिए था और मकान-मालिक के कब्जे में था और न ही इस बारे में कुछ कहा गया है कि कब/कैसे फोटो प्रति बनवाई गई थी और किसके द्वारा और कहां । इस बारे में भी कुछ नहीं कहा गया है कि तारीख 28 जून, 2006 का करार किस प्रकार किराएदार के अधिकारों से संबद्ध था और स्वीकृततः 1872 के अधिनियम की धारा 65 के अधीन आवेदन किसी शपथपत्र द्वारा समर्थित नहीं था ।

6. श्री अशोक मेहता ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 25 फरवरी, 2017 का आवेदन, जिसके द्वारा किराएदार का आवेदन खारिज किया गया है, सभी तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् खारिज किया गया था । यह विवेक के आधार पर किया गया आदेश है जहां विवेक

किसी अनुचितता या सुस्पष्ट अनियमितता द्वारा दूषित नहीं है । परिणामतः इस न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अपनी पर्यवेक्षणीय अधिकारिता के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । श्री अशोक मेहता ने अपनी दलीलों के समर्थन में उच्चतम न्यायालय द्वारा **श्रीमती जे. यशोदा** बनाम **श्रीमती शोभा रानी**[1] ; **एम. चन्द्रा** बनाम **एम. थंगामुथू और अन्य**[2] ; **एच. सिद्दीकी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** बनाम **ए. रामालिंगम**[3] और **अशोक दुलीचंद** बनाम **माधव लाल दूबे और एक अन्य**[4] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया है ।

7. सुना गया । विचार किया गया ।

8. यह दोहराया जा सकता है कि साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अधीन तथ्यों को प्राथमिक साक्ष्य द्वारा साबित किया जाएगा और द्वितीयक साक्ष्य केवल नियम का एक अपवाद है । उपर्युक्त अपवाद को लागू करने के लिए आधारभूत तथ्यों को विचारण न्यायालय के समाधान के लिए उसके समक्ष रखा जाना चाहिए और द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तें पूरी होनी चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने **एम. चन्द्रा** बनाम **एम. थंगामुथू और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि द्वितीयक साक्ष्य केवल इस कारण से अनुज्ञात नहीं किया जा सकता कि इस संबंध में अनुमति मांगी गई है । ऐसी अनुमति न्यायालय द्वारा केवल यह समाधान होने पर ही दी जा सकती है कि प्राथमिक साक्ष्य का अभाव स्वतः आवेदक के लिए आरोप्य नहीं है । **एच. सिद्दीकी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** बनाम **ए. रामालिंगम** (उपरोक्त) वाले मामले में यह दोहराया गया है कि जहां मूल दस्तावेज युक्तियुक्त कारण के बिना पेश नहीं किए गए हैं और द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए तथ्यात्मक आधार साबित नहीं होता है वहां न्यायालय के लिए यह अनुज्ञेय नहीं है कि वह किसी पक्षकार को द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुज्ञात करे । उक्त मामले के पैरा 12 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "12. अधिनियम, 1872 की धारा 65 के उपबंध पक्षकारों द्वारा द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुमति लेने के लिए उपबंध करते

---

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1721 = (2007) 5 एस. सी. सी. 730.
[2] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 146 = (2010) 9 एस. सी. सी. 712.
[3] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1492 = (2011) 4 एस. सी. सी. 240.
[4] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1748 = (1975) 4 एस. सी. सी. 664.

हैं । तथापि, ऐसी प्रक्रिया अनेक परिसीमाओं के अध्यधीन है । ऐसे किसी मामले में जहां मूल दस्तावेज किसी समय पेश नहीं किए गए हैं और न ही द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए कोई तथ्यात्मक आधार पेश किया गया है वहां न्यायालय के लिए यह अनुज्ञेय नहीं है कि वह किसी पक्षकार को द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुज्ञात करे । अतः किसी दस्तावेज की अन्तर्वस्तु से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य तब तक अनुज्ञेय नहीं है जब तक कि मूल दस्तावेज के पेश न किए जाने को अभिलेख पर नहीं लाया जाता जिससे कि यह साबित हो सके कि धारा में दी गई एक या अनेक शर्तें पूरी कर दी गई हैं । द्वितीयक साक्ष्य आधारभूत साक्ष्य द्वारा इस बारे में सत्यापित होनी चाहिए कि अभिकथित प्रति वस्तुतः मूल प्रति की सही प्रति है ।"

9. उच्चतम न्यायालय ने **श्रीमती जे. यशोदा** बनाम **श्रीमती के. शोभा रानी** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि द्वितीयक साक्ष्य पेश करने हेतु हकदारी बनाने के लिए पक्षकार के लिए यह आवश्यक है कि वह उसकी विद्यमानता साबित करने के लिए ऐसा अनुग्रह करे और मूल दस्तावेज के निष्पादन को साबित करे । उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **अशोक दुलीचंद** बनाम **माधव लाल दूबे और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 7 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"7. यह उपदर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई अन्य सामग्री नहीं है कि मूल दस्तावेज प्रत्यर्थी सं. 1 के कब्जे में था । अपीलार्थी यह स्पष्ट करने में भी विफल रहा है कि ऐसी कौन सी परिस्थितियां थीं जिनके अधीन फोटो प्रति तैयार की गई थी और इसकी फोटो प्रति तैयार करते समय मूल दस्तावेज किसके कब्जे में था । प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपने शपथपत्र में दस्तावेज को अपने कब्जे में होने या ऐसे किसी दस्तावेज के साथ कुछ भी होने के बारे में इनकार किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने फोटो प्रति के बारे में कोई संदेह नहीं किया । उच्च न्यायालय ने सभी परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी द्वारा फोटो प्रति के रूप में द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए कोई आधार अधिकथित नहीं किया गया था । हमें उच्च न्यायालय के उपर्युक्त आदेश में ऐसी कोई अनियमितता प्रतीत नहीं होती है जो इस

न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने के लिए न्यायौचित्यता प्रदान कर सके ।"

10. उच्चतम न्यायालय ने **यू. श्री** बनाम **यू. श्री निवास**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि अन्य द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 11, 12 और 14 के अधीन फाइल किए गए किसी आवेदन के विचारण में विरोधी पक्षकार द्वारा दस्तावेज की विद्यमानता से इनकार किसी अन्य सामग्री के अभाव में द्वितीयक साक्ष्य पेश करने को अनुज्ञात करने के लिए स्वत: कोई आधार नहीं हो सकता है । **नवाब सिंह**[2] वाले मामले में यह कहा गया है कि द्वितीयक साक्ष्य के बारे में संदेह साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन किसी आवेदन की खारिजी को अनुज्ञात नहीं करता । तथापि, यह नहीं कहा जा सकता है कि द्वितीयक साक्ष्य न्यायालय द्वारा गहरी जांच के बिना अविवेचित रूप से अनुज्ञात किया जाना चाहिए । जांच इस प्रकार होनी चाहिए कि कोई अपवाद लागू न हो । द्वितीयक साक्ष्य प्राथमिक साक्ष्य द्वारा तथ्यों को साबित करने के लिए नियम के रूप में एक अपवाद है । **नवाब सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के अतिरिक्त दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा **अशोक दुलीचंद** (उपरोक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया निर्णय पूर्वतर था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी दस्तावेज के संबंध में सभी संदेह वाली परिस्थितियां जहां साक्ष्य के रूप द्वितीयक साक्ष्य पेश किए जाने की ईप्सा की गई हो, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन किसी आवेदन की खारिजी का कारण बन सकता है । श्री रजत रंजन ने **श्रीमती बीबी आयशा और अन्य** बनाम **बिहार सूबाई सुन्नी मजलिस औक़ाफ़ और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले के निर्णय का गलत रूप से अवलंब लिया है क्योंकि उक्त मामला साक्ष्य अधिनियम की धारा 65(1) के अधीन एक मामला था न कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 65(क) से संबंधित मामला, जैसाकि वर्तमान मामले में है । इसके अतिरिक्त **श्रीमती बीबी आयशा और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रश्नगत दस्तावेज विद्यमानता के आधार पर स्वीकार किया गया था, जबकि वर्तमान मामले में ऐसा नहीं है ।

11. उपर्युक्त विधिक स्थिति के संदर्भ में जैसा कि विभिन्न निर्णयों से स्पष्ट है, यह साबित होता है कि किराएदार द्वारा फाइल की गई फोटो प्रति

---

[1] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 4215 = (2013) 2 एस. सी. सी. 114.

[2] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1668.

के आधार पर तारीख 28 जून, 2006 के करार के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा ठीक ही खारिज किया गया था । उन परिस्थितियों का जिनमें तारीख 28 जून, 2006 के अभिकथित करार की तात्पर्यित फोटो प्रति पेश की गई है, आवेदन में भी उल्लेख नहीं किया गया था । इस बारे में कुछ नहीं कहा गया था कि उस समय मूल दस्तावेज किसके कब्जे में था जब फोटो प्रति बनाई गई थी और यह प्रति कब और किसके द्वारा बनवाई गई थी और अभिकथित मूल दस्तावेज की फोटो प्रति बनाने का क्या प्रयोजन था । यह उल्लेख करना भी पूर्णतया सुसंगत है कि तारीख 28 जून, 2006 का तात्पर्यित करार जे. के. जे. एंड संस ज्वैलर्स और मकान-मालिक के बीच था और इसमें किराएदार को निर्दिष्ट भी नहीं किया गया था । साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन आवेदन में इस बारे में कुछ नहीं कहा गया था कि किराएदार किस रीति में तात्पर्यित करार से संबद्ध था और यह किन परिस्थितियों में उपर्युक्त जे. के. जे. एंड संस के लिए लाभदायक था, जैसा कि इसके परिशीलन से साबित होता है और तारीख 28 जून, 2006 का करार मकान-मालिक के कब्जे में था जिसने इस बात से इनकार किया था । जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किया गया है कि किराएदार द्वारा साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन रहस्यपूर्ण आवेदन की आकस्मिक प्रकृति के अतिरिक्त यह विलंबित भी था और इसे राजस्थान किराया नियंत्रण अधिनियम, 2001 विशेषतया इसकी धारा 15(5) द्वारा किराएदार की अपेक्षित बेदखली में दस वर्ष के पश्चात् प्रतिपरीक्षा के आधार पर 2006 के बेदखली आवेदन में 2016 में फाइल किया गया था हालांकि प्रत्यक्षतया विरोधी पक्षकार पर याचिका की तामील के 240 दिनों के भीतर फाइल किया गया था ।

12. मेरा यह सुविचारित मत है कि किराएदार द्वारा तारीख 28 जून, 2006 की तात्पर्यित फोटो प्रति के बारे में द्वितीयक साक्ष्य पेश करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन आवेदन में आधारभूत तथ्यों का उल्लेख नहीं किया गया था । यह अचानक और गुणता के बिना निराशाजनक रूप से पेश किया गया था । अकस्मात् द्वितीयक साक्ष्य को पेश करना जैसा कि किराएदार द्वारा अनुरोध किया गया था, न्यायिक प्रशासन में विघ्न डालने के बराबर है जिससे कि विचारण लंबा चले । अभिलेख पर साक्ष्य की सभी रीतियों द्वारा संदेहास्पद वंशावली पेश की गई है जिसके परिणामस्वरूप असाधारण विलंब हुआ है जबकि पहले ही अत्यधिक

लंबित मामले हैं और मामला प्रतिकूल रूप से सघन-टिप्पण करने का बनता है । मेरा यह सुविचारित मत है कि ऐसा कुछ भी अनुचित या किसी प्रकार से अवैध नहीं है जिससे कि विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 25 फरवरी, 2017 को पारित आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए आधार बन सके ।

13. सिविल रिट याचिका खारिज की जाती है ।

14. इस आदेश की एक-एक प्रति सभी संबंधित याचिकाओं में सम्मिलित की जाए ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 114 **राजस्थान**

*महेन्द्र नाथ सोरल और अन्य

बनाम

रविन्द्र नाथ सोरल और अन्य

तारीख 19 सितम्बर, 2018

न्यायमूर्ति महेन्द्र माहेश्वरी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 20 और नियम 18(2) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96] – जब न्यायालय किसी अचल संपत्ति के विभाजन के या उसमें के अंश पर पृथक् कब्जे के लिए डिक्री पारित करता है तब यदि न्यायालय द्वारा उस संपत्ति का विभाजन या पृथक्करण बिना अतिरिक्त जांच के सुविधापूर्वक नहीं किया जा सकता, तो संपत्ति में हितबद्ध पक्षकारों के अधिकारों की घोषणा करने वाली और ऐसे अतिरिक्त निदेश देने वाली, जो अपेक्षित हों, प्रारंभिक डिक्री पारित कर सकता है ।

अपीलार्थियों ने यह प्रथम सिविल अपील विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश क्रम संख्या 4 कोटा द्वारा 2006 की सिविल प्रकीर्ण आवेदन

---

* मूल निर्णय हिन्दी में है ।

संख्या 17 (प्रार्थना-पत्र बाबत बनाए जाने अंतिम डिक्री) में तारीख 3 जनवरी, 2009 को पारित आदेश, जिसके अंतर्गत विवादित संपत्तियों के बंटवारे की स्कीम को अंतिम रूप प्रदान किया गया, से व्यथित होकर प्रस्तुत की है । अपील को भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – परिणामस्वरूप अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत की गई यह अपील, अपीलाधीन आदेश आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 6 की हद तक अस्वीकार की जाती है, तथा उक्त पैरा की हद तक अधीनस्थ न्यायालय के आदेश को यथावत रखा जाता है तथा दोनों पक्षों की ओर से किए गए निवेदन एवं सहमति की रोशनी में निम्न निर्देश दिए जाते हैं- आदेशात्मक भाग की पैरा संख्या 5 के तहत मृतक पक्षकार श्रीमती उषा शर्मा के क्रम में निर्धारित 33,96,813/- रुपए में से पूर्व में अन्य सह-भागीदारों सहित सभी पक्षकारों को अदा की जा चुकी राशि 20,00,000/- रुपए का समायोजन करने के उपरांत प्रतिवादीगण सुरेन्द्र नाथ सोरल व रवीन्द्र नाथ सोरल, प्रत्येक को देय शेष राशि 4,85,309/- रुपए (जो बहस के दौरान प्रत्यर्थीगण के योग्य अधिवक्तागण द्वारा शेष होना बताया गया है) तथ उक्त राशि पर तारीख 3 जनवरी, 2009 से सात प्रतिशत वार्षिक ब्याज मृतका श्रीमती उषा शर्मा अपीलार्थी-प्रतिवादी संख्या 1 के विधिक प्रतिनिधिगण (प्रतिवादी संख्या 2/1 लगायत 2/4) संबंधित पक्षकारों को दो माह में अदा करेंगे । आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 7 के तहत प्रतिवादी सुरेन्द्र नाथ सोरल को निर्देशित किया जाता है कि वह बैंक में जमा नकद राशि के तहत संबंधित हकदार प्राप्तकर्ता पक्षकारान को देय राशि मय 7 प्रतिशत वार्षिक ब्याज तारीख 3 जनवरी, 2009 से ताअदायगी दो माह की अवधि में अदा करेंगे । आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 9 के तहत अपीलार्थी महेन्द्र नाथ सोरल सोने के जेवर व चांदी के बर्तन की कीमत के क्रम में प्रत्येक हकदार पक्षकार को निर्धारित राशि 18,396/- रुपए मय तारीख 3 जनवरी, 2009 से ताअदायगी 7 प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित दो माह की अवधि में अदा करें । उक्त निर्धारित अवधि में संबंधित पक्षकारों द्वारा यदि निर्देशानुसार दो माह में राशि अदा नहीं की जाती है, तो प्रत्येक पक्षकार, संबंधित उत्तरदायी व्यक्ति से तावसूली 12 प्रतिशत की दर से ब्याज राशि प्राप्त करने का अधिकारी होगा । उपरोक्तानुसार सिविल प्रथम अपील का निस्तारण किया जाता है । जहां तक प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से प्रस्तुत क्रास-आब्जेक्शन का प्रश्न है, चूंकि मूल अपील के तहत विवादित संपत्ति के क्रम में निर्णय पारित किया जाकर विवादित संपत्ति के क्रम में

अधीनस्थ न्यायालय द्वारा किए गए विभाजन में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, अतः मूल अपील में पारित निर्णय को क्रास-आब्जेक्शन में पारित किया जाना माना जाकर क्रास-आब्जेक्शन का निस्तारण किया जाता है । (पैरा 14, 15, 16 और 17)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की एस. बी. सिविल प्रथम अपील सं. 170 और 2009 की एस. बी. सिविल प्रति आक्षेप सं. 129.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अनिता अग्रवाल, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री मुनेश शर्मा, सुदेश बंसल और अरुण शर्मा, अधिवक्तागण

न्यायमूर्ति महेन्द्र माहेश्वरी – अपीलार्थी पक्ष की ओर से यह सिविल प्रथम अपील विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, क्रम संख्या 4, कोटा द्वारा दीवानी मुतपार्का संख्या 17/2006 (प्रार्थना पत्र बाबत बनाए जाने अंतिम डिक्री) में पारित आदेश तारीख 3 जनवरी, 2009 जिसके तहत विवादित संपत्तियों के क्रम में बंटवारे की स्कीम दी गई है, से व्यथित होकर प्रस्तुत की गई है ।

2. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी पक्ष की ओर से निवदेन किया गया है कि अपीलाधीन आदेश के तहत विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय द्वारा प्लॉट संख्या 5, प्रोफेसर कॉलोनी, नयापुरा, कोटा के विभाजन की जो स्कीम तय की गई है, उसमें अपीलार्थी/वादी महेन्द्र नाथ सोरल को पोर्शन-ए व उससे लगे हुए कॉमन पार्ट, प्रतिवादी आशा सोरल को पोर्शन-बी तथा उससे लगे हुए कॉमन भाग तथा प्रतिवादी सुरेन्द्र नाथ सोरल को पोर्शन-सी मय छत तथा रवीन्द्र नाथ सोरल पोर्शन-डी मय छत प्राप्त करने का अधिकारी बताया गया है तथा इसी क्रम में आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 6 में सुरेन्द्र नाथ सोरल व रवीन्द्र नाथ सोरल को स्वयं के पोर्शन से नीचे आने के लिए सीढ़ियों के उपयोग उपभोग का अधिकार तथा प्रतिवादीगण को उनके पोर्शन के ऊपर की छत के उपयोग उपभोग का अधिकारी व स्वामित्व प्रदान किया गया है । उनका मूल रूप से कथन रहा कि चूंकि प्लॉट संख्या 5, प्रोफेसर कॉलोनी, नयापुरा, कोटा, पक्षकारों के एकल-स्वामित्व की संपत्ति हैं, ऐसी स्थिति में

अपीलार्थी/वादी को उक्त संपत्ति की छत का कॉमन भाग अथवा 1/4 भाग का अधिकार दिया जाना आवश्यक है, अतः अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आदेश इस हद तक अपास्त किया जाए तथा वादी-अपीलार्थी महेन्द्र नाथ सोरल को, प्रतिवादीगण रवीन्द्र नाथ सोरल व सुरेन्द्र नाथ सोरल को दिए गए छत के उपयोग उपभोग एवं स्वामित्व के अधिकार में से कॉमन हिस्से अथवा 1/4 हिस्सा प्रदान किए जाने का आदेश दिया जाए ।

3. प्रत्यर्थीगण के विद्वान् अधिवक्तागण द्वारा उक्त तर्कों का विरोध किया गया । साथ ही यह भी निवेदन किया गया कि इस अपील के विरूद्ध प्रत्यर्थी पक्ष की ओर से क्रॉस-आब्जेक्शन भी प्रस्तुत किया गया है, जिसे स्वीकार किया जाए ।

4. दोनों पक्षों के निवेदन एवं सहमति के आधार पर इस अपील के साथ-साथ क्रॉस-आब्जेक्शन के क्रम में भी सुना गया ।

5. प्रत्यर्थीगण-प्रतिवादीगण के विद्वान् अधिवक्ता की ओर से निवेदन किया गया कि अपीलाधीन आदेश के पैरा संख्या 6 में न्यायालय द्वारा दी गई स्कीम पूर्ण रूप से विधिसम्मत हैं, जिसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । उनका यह भी कथन रहा कि अपीलार्थी-प्रतिवादी संख्या 4 श्रीमती उषा शर्मा को मकान नम्बर, 15, वन विहार कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर जरिए विभाजन आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 5 में अंकित राशि अदा किए जाने की शर्तों पर दिया जा चुका है तथा प्लॉट संख्या 5, प्रोफेसर कॉलोनी, नयापुरा, कोटा की हद तक इस अपील में वे मृतका प्रतिवादी संख्या 4 उषा शर्मा के विधिक प्रतिनिधियों की ओर से कोई प्रार्थना नहीं करते । उनका यह भी कथन रहा कि अपीलाधीन आदेश के आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 5 में, जिस राशि 33,96,813/- रुपए की अदायगी का दायित्व प्रतिवादी संख्या 4 उषा शर्मा पर अधिरोपित किया गया था, उसमें से 20,00,000/- रुपए की राशि, अन्य सह-भागीदारों सहित सभी पक्षकारों को प्रदान की जा चुकी है, तथा शेष राशि वह मय ब्याज शेष हिस्सेदारों को देने हेतु तत्पर है । उनका यह भी कथन रहा कि आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 7 के अनुसार बैंक में जमा राशि 1,38,205/- रुपए में हर पक्ष को 1/5 भाग मय ब्याज पक्षकार सुरेन्द्र नाथ सोरल अदा करने हेतु तैयार है । उनका यह भी कथन रहा कि आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 8 में तारीख 15 अगस्त, 2007 को सोने के जेवर व चांदी के बर्तन की जो कीमत 91,980/- रुपए बताई गई है में से प्रत्येक

को 18,396/- रुपए मय ब्याज अपीलार्थी महेन्द्र नाथ सोरल से प्रत्येक पक्ष को दिलवाई जाए ।

6. अपीलार्थी महेन्द्र नाथ सोरल तथा सुरेन्द्र नाथ सोरल आज व्यक्तिगत रूप से न्यायालय के समक्ष उपस्थित हैं ।

7. सुना गया एवं पत्रावली का अवलोकन किया गया ।

8. जहां तक अधीनस्थ न्यायालय के अपीलाधीन आदेश के आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 6 का प्रश्न है, स्वीकृत रूप से अधीनस्थ न्यायालय ने पत्रावली पर उपलब्ध कमिश्नर रिपोर्ट एवं नक्शा मौका की रोशनी में प्लॉट संख्या 5, प्रोफेसर कॉलोनी, नयापुरा, कोटा का ग्राउण्ड-फ्लोर पर स्थित पोर्शन-ए अपीलार्थी-वादी महेन्द्र नाथ सोरल को तथा पोर्शन-बी प्रतिवादी संख्या 4 आशा सोरल को उनके साथ लगे हुए कॉमन पार्शन के साथ जरिए विभाजन दिया गया है तथा प्रतिवादी सुरेन्द्र नाथ सोरल को पोर्शन-सी व रवीन्द्र नाथ सोरल को पोर्शन-डी, जो कि उक्त मकान के प्रथम तल पर स्थित हैं, को मय छत दिया है । इस क्रम में अपीलार्थी-वादी महेन्द्र नाथ सोरल के विद्वान् अधिवक्ता की ओर से जो तर्क पोर्शन-ए तथा पोर्शन-डी की छत के कॉमन हिस्से या 1/4 हिस्से का अधिकार अपीलार्थी को दिए जाने के संबंध में प्रस्तुत किया गया है, पत्रावली पर, उपलब्ध कमिश्नर रिपोर्ट व नक्शा मौका के साथ-साथ अधीनस्थ न्यायालय के निष्कर्ष से प्रकट होता है कि पोर्शन-ए तथा पोर्शन-बी के तहत जो भाग ग्राउण्ड-फ्लोर पर वादी-अपीलार्थी महेन्द्र नाथ सोरल एवं प्रतिवादी आशा सोरल को दिया गया है, उसमें उक्त भूखंड पर निर्मित भू-भाग के अतिरिक्त उक्त संपत्ति के मध्य में स्थित चौक एवं बरामदे में भी आधा-आधा हिस्सा दिया गया है तथा इसी के अनुरूप प्रतिवादीगण सुरेन्द्र नाथ सोरल व रविन्द्र नाथ सोरल को प्रथम तल पर स्थित पोर्शन-सी व पोर्शन-डी सहित उक्त पोर्शनों पर बनी छत के उपयोग उपभोग का पूर्ण अधिकार व स्वामित्व प्रदान किया गया है । ऐसी स्थिति में, इस न्यायालय के विनम्र मत में पक्षकारों के मध्य उक्त विभाजित पोर्शनों के क्रम में अपीलाधीन आदेश में ऐसी कोई असमानता अथवा त्रुटि होना नहीं पाया जाता, जिसके आधार पर अपीलार्थी पक्ष के विधिक अधिकारों पर कोई विपरीत प्रभाव पड़ना माना जा सकता हो ।

9. स्वीकृत रूप से अपीलाधीन आदेश के तहत अपीलार्थी/प्रतिवादी उषा शर्मा को आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 5 के तहत मकान नम्बर 15, वन विहार कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर जरिये विभाजन श्रीमती उषा शर्मा

को प्रदान किया जा चुका है तथा प्लॉट नं. 5 प्रोफेसर कॉलोनी, नयापुरा, कोटा से संबंधित संपत्ति पर उसे कोई मालिकाना हक नहीं दिया गया है, ऐसी स्थिति में प्लॉट नं. 5, प्रोफेसर कॉलोनी, नयापुरा, कोटा से संबंधित संपत्ति पर मूल विवाद अपीलार्थी महेन्द्र नाथ सोरल तथा प्रतिवादी आशा सोरल, सुरेन्द्र नाथ सोरल व रवीन्द्र नाथ सोरल के मध्य शेष रहा था, जिसके क्रम में अधीनस्थ न्यायालय ने आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 1, 2, 3, 4 और 6 में दी गई स्कीम के तहत जो विभाजन किया है, उसमें ऐसी कोई त्रुटि प्रकट नहीं होती, जिससे उक्त विभाजन में किसी प्रकार हस्तक्षेप किया जा सके ।

10. जहां तक योग्य अधिवक्तागण प्रतिवादीगण द्वारा आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 5 में श्रीमती उषा शर्मा के क्रम में मकान नम्बर, 15, वन विहार कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर के क्रम में शेष रही राशि के भुगतान के क्रम में किए गए निवेदन का प्रश्न है, स्वीकृत रूप से अधिरोपित 33,96,813/- रुपए में से श्रीमती उषा शर्मा द्वारा अन्य सह-भागीदारों सहित सभी पक्षकारों को 20,00,000/- रुपए अदा किया जाना प्रकट हुआ है तथा प्रतिवादीगण सुरेन्द्र नाथ सोरल व रवीन्द्र नाथ सोरल, प्रत्येक को 4,85,309/- रुपए मय ब्याज दिया जाना शेष होना बताया गया है ।

11. इस क्रम में दोनों पक्षों की ओर से निवेदन किया गया कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित अपीलाधीन आदेश तारीख 3 जनवरी, 2009 को पारित हुआ है, अतः प्रतिवादी-प्रत्यर्थीगण रवीन्द्र नाथ सोरल व सुरेन्द्र नाथ को उन्हें देय राशि के साथ-साथ उक्त राशियों पर 7 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज प्रदान किए जाने का भी आदेश प्रदान कर दिया जाए ।

12. साथ ही, उनका यह भी कथन रहा कि आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 7 में बैंक में जमा राशि, जिसमें प्रत्यर्थीगण रवीन्द्र नाथ सोरल व सुरेन्द्र नाथ सोरल, प्रत्येक का 1/5, 1/5 हिस्सा हैं, के क्रम में भी बैंक ब्याज की दर से संबंधित पक्षकारों को भुगतान किए जाने व आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 8 में सोने के जेवर व चांदी के बर्तन जिनकी तारीख 15 सितम्बर, 2007 के अनुसार कुल कीमत 91,980/- रुपए होती है तथा प्रत्येक पक्ष को उक्त राशि में से 18,396/- रुपए प्राप्त करने का अधिकारी बताया गया है, के क्रम में निर्णय तारीख 3 जनवरी, 2009 से ताअदायगी 7 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज सहित उक्त राशि प्रत्यर्थीगण को भुगतान किए जाने का आदेश अपीलार्थी महेन्द्र नाथ सोरल को दिए जाने का आदेश प्रदान कर दिया जाए ।

13. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी द्वारा प्रकट किया गया कि विद्वान् अधिवक्तागण प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रस्तुत किए गए उक्त तर्कों पर उन्हें आपत्ति नहीं हैं ।

14. परिणामस्वरूप अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत की गई यह अपील, अपीलाधीन आदेश आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 6 की हद तक अस्वीकार की जाती है, तथा उक्त पैरा की हद तक अधीनस्थ न्यायालय के आदेश को यथावत रखा जाता है तथा दोनों पक्षों की ओर से किए गए निवेदन एवं सहमति की रोशनी में निम्न निर्देश दिए जाते हैं :–

1. आदेशात्मक भाग की पैरा संख्या 5 के तहत मृतक पक्षकार श्रीमती उषा शर्मा के क्रम में निर्धारित 33,96,813/- रुपए में से पूर्व में अन्य सह-भागीदारों सहित सभी पक्षकारों को अदा की जा चुकी राशि 20,00,000/- रुपए का समायोजन करने के उपरांत प्रतिवादीगण सुरेन्द्र नाथ सोरल व रवीन्द्र नाथ सोरल, प्रत्येक को देय शेष राशि 4,85,309/- रुपए (जो दौराने बहस योग्य अधिवक्तागण प्रत्यर्थीगण द्वारा शेष होना बताया गया है) तथ उक्त राशि पर तारीख 3 जनवरी, 2009 से सात प्रतिशत वार्षिक ब्याज मृतका श्रीमती उषा शर्मा अपीलार्थी-प्रतिवादी संख्या 1 के विधिक प्रतिनिधिगण (प्रतिवादी संख्या 2/1 लगायत 2/4) संबंधित पक्षकारों को दो माह में अदा करेंगे ।

2. आदेशात्मक भाग की पैरा संख्या 7 के तहत प्रतिवादी सुरेन्द्र नाथ सोरल को निर्देशित किया जाता है कि वह बैंक में जमा नकद राशि के तहत संबंधित हकदार प्राप्तकर्ता पक्षकारान को देय राशि मय 7 प्रतिशत वार्षिक ब्याज तारीख 3 जनवरी, 2009 से ताअदायगी दो माह की अवधि में अदा करेंगे ।

3. आदेशात्मक भाग के पैरा संख्या 9 के तहत अपीलार्थी महेन्द्र नाथ सोरल सोने के जेवर व चादीं के बर्तन की कीमत के क्रम में प्रत्येक हकदार पक्षकार को निर्धारित राशि 18,396/- रुपए मय तारीख 3 जनवरी, 2009 से ताअदायगी 7 प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित दो माह की अवधि में अदा करें ।

15. उक्त निर्धारित अवधि में संबंधित पक्षकारों द्वारा यदि निर्देशानुसार दो माह में राशि अदा नहीं की जाती है, तो प्रत्येक पक्षकार, संबंधित उत्तरदायी व्यक्ति से तावसूली 12 प्रतिशत की दर से ब्याज राशि प्राप्त करने का अधिकारी होगा ।

16. उपरोक्तानुसार सिविल प्रथम अपील का निस्तारण किया जाता है ।

17. जहां तक प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से प्रस्तुत क्रास-आब्जेक्शन का प्रश्न है, चूंकि मूल अपील के तहत विवादित संपत्ति के क्रम में निर्णय पारित किया जाकर विवादित संपत्ति के क्रम में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा किए गए विभाजन में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, अतः मूल अपील में पारित निर्णय को क्रास-आब्जेक्शन में पारित किया जाना माना जाकर क्रास-आब्जेक्शन का निस्तारण किया जाता है ।

18. यह आदेश/निर्णय आज तारीख 19 सितम्बर, 2018 को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 348(1) के तहत भारत सरकार की अधिसूचना राजपत्र संख्या 1, तारीख 2 जनवरी, 1999 एवं राजस्थान राजपत्र तारीख 10 मार्च, 1971 के तहत प्राधिकृत किए जाने के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा में लिखाया गया ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

महीं./अवि.

(2019) 1 सि. नि. प. 121 **राजस्थान**

*संतोष देवी और अन्य

बनाम

जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड

तारीख 29 सितम्बर, 2018

न्यायमूर्ति महेन्द्र महेश्वरी

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 166 – दुर्घटना प्रतिकर – खेत में बिजली का तार टूट कर गिर जाने और बिजली के करंट से मृत्यु के परिणामस्वरूप बिजली विभाग की लापरवाही के आधार पर प्रतिकर राशि हेतु आवेदन – ऐसी दुर्घटना के कारण मृत्यु के मामलों में प्रतिकर राशि की गणना मोटर यान अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत होगी ।

---

* मूल निर्णय हिन्दी में है ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 166 – दुर्घटना प्रतिकर – मृतक के आश्रितों को प्रेम और स्नेह की मद में प्रतिकर नहीं प्रदान किया जा सकता क्योंकि इस मद को पारस्परिक मद नहीं माना जा सकता ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि मृतक की मृत्यु खेत में बिजली का तार टूट कर गिर जाने से बिजली के करंट लग जाने के कारण हो गई जिसके परिणामस्वरूप बिजली विभाग की लापरवाही के आधार पर प्रतिकर प्राप्त करने हेतु मोटर यान अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत आवेदन फाइल किया गया । मोटर दुर्घटना दावा अधिकारी ने आक्षेपित आदेश द्वारा प्रतिकर प्रदान किए जाने का आदेश पारित कर दिया, जिससे व्यथित होकर मृतक के आश्रितों ने विभिन्न आधारों पर यह अपील फाइल की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – जहां तक मृतक के आश्रितों को मृतक के स्नेह वंचना में दिलाई गई राशि को क्षतिपूर्ति राशि से कम किए जाने के क्रम में योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी के तर्क का प्रश्न है, इस क्रम में इस न्यायालय के विनम्र मत में पारस्परिक मद की परिभाषा यद्यपि न्याय दृष्टांत राजेश बनाम राजबीर के मामले में विवेचित है तथा इसमें प्रेम व स्नेह की मद को पारस्परिक मद की श्रेणी में अंकित किया गया है, किन्तु न्याय दृष्टांत नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस मद को पारस्परिक मदों में नहीं माना गया है । ऐसी स्थिति में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा इस मद में दिलाई गई राशि को पारस्परिक मदों में नहीं माना जाकर इस मद में किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति राशि क्लेमेंट को दिलाया जाना उचित नहीं है । अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को क्षतिपूर्ति राशि 7,05,348/- रुपए दिलाई गई है, जिसमें उपरोक्तानुसार 4,21,868/- रुपए की बढ़ोतरी करते हुए कुल क्षतिपूर्ति राशि 11,27,216/- रुपए की जाती है । योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी की ओर से ब्याज के क्रम में प्रस्तुत उक्त न्याय दृष्टांत नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी और अन्य और राजेश बनाम राजबीर में प्रतिपादित सिद्धांतों की रोशनी में बढ़ी हुई क्षतिपूर्ति राशि ब्याज दर, ब्याज प्राप्त करने की तिथि तथा क्षतिपूर्ति राशि के आनुपातिक विवरण के क्रम में समस्त शर्तें अधीनस्थ न्यायालय के आदेशानुसार प्रभावी रहेंगी । तद्नुसार अपील निस्तारित की जाकर अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय में क्षतिपूर्ति राशि के क्रम में उपरोक्तानुसार संशोधन किया जाता है । (पैरा 10, 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	1997 (2) टी. ए. सी. 369 (बोम्बे) : **पूरन सिंह और अन्य** बनाम **मुरारीलाल और अन्य** ;	3
[2014]	(2017) 16 एस. सी. सी. 680 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रणय सेठी और अन्य** ;	6
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 3104 : **सरला वर्मा** बनाम **दिल्ली परिवहन निगम** ।	6

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की एस.बी. सिविल प्रथमअपील सं. 96.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री नरपत सिंह, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री निखिलेश कटारा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति महेन्द्र महेश्वरी – अधीनस्थ न्यायालय, अपर जिला न्यायाधीश, कोटपुतली जिला जयपुर द्वारा वादपत्र संख्या-11/2015 में पारित निर्णय तारीख 26 अक्तूबर, 2017, जिसके तहत मृतक जले सिंह के आश्रितों/अपीलार्थियों की ओर से प्रस्तुत वाद स्वीकार किया जाकर मृतक की बिजली के करंट से मत्यु होने के परिणामस्वरूप कुल 7,05,348/- रुपए की क्षतिपूर्ति राशि दिलाई गई, को अपर्याप्त मानते हुए क्षतिपूर्ति राशि को बढ़ाए जाने हेतु अपीलार्थी की ओर से यह अपील प्रस्तुत की गई है ।

2. प्रकरण की तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार मृतक जलेसिंह की तारीख 4 अप्रैल, 2013 को खेत में लावणी के दौरान बिजली का तार टूटकर गिर जाने से, बिजली के करंट से मृत्य होने के परिणामस्वरूप बिजली विभाग की लापरवाही के आधार पर मुआवजा राशि प्राप्ति हेतु वाद प्रस्तुत कर विभिन्न मदों में क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने की प्रार्थना की गई । विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय द्वारा बनाए गए विवाद्यकों के क्रम में दोनों पक्षों के तर्क सुनने एवं पत्रावली पर उपलब्ध मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर आक्षेपित निर्णय द्वारा क्षतिपूर्ति राशि दिलाई गई, जिसमें बढ़ोतरी

किए जाने हेतु अपीलार्थी की ओर से यह अपील प्रस्तुत की गई है ।

3. बहस सुनी गई । योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी का कथन रहा कि घातक दुर्घटना में मृत्यु होने के मामलों में क्षतिपूर्ति राशि की गणना के क्रम में मोटर वाहन अधिनियम के ही प्रावधान लागू होते हैं, अतः मोटर वाहन अधिनियय के प्रावधानों के अनुरूप क्षतिपूर्ति राशि की गणना कर, क्षतिपूर्ति राशि में बढ़ोतरी की जाए । इस क्रम में उनकी ओर से न्याय दृष्टांत **पूरन सिंह और अन्य** बनाम **मुरारीलाल और अन्य**[1] प्रस्तुत किया ।

4. क्षतिपूर्ति राशि के क्रम में योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी का कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मृतक की आयु 25 वर्ष के आधार पर 17 का गुणांक उपयोग में लेते हुए एवं मृतक पर होने वाले खर्च के रूप में 1/4 की कटौती किए जाने के निष्कर्ष को कोई चुनौती नहीं देते हैं ।

5. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी का कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मृतक की आय की गणना न्यूनतम मजदूरी 166/- रुपए प्रतिदिन से 26 दिन की आय के आधार पर 4,316/- रुपए मासिक आय मानी गई है, जबकि मृतक के कार्य की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए 30 दिन की मजदूरी के आधार पर 4,980/- रुपए मासिक आय माना जाना आवश्यक है ।

6. उनका यह भी कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दाह संस्कार की मद में दिलाई गई राशि 10,000/- रुपए को बढ़ाकर 15,000/- रुपए करने एवं मृतक की पत्नी को पति सुख वंचना की मद में दिलाई गई 10,000/- रुपए की राशि को बढ़ाकर 40,000/- रुपए करने तथा उसमें प्रत्येक तीन वर्ष में दस प्रतिशत की बढ़ोतरी कर राशि की गणना की जाए । उनका यह भी कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय ने भविष्यवर्ती आय की मद में कोई राशि नहीं दिलाई है । अतः इस मद में भी 40 प्रतिशत राशि दिलाई जाए । अपने तर्कों के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा न्याय दृष्टांत **सरला वर्मा** बनाम **दिल्ली परिवहन निगम**[2] व **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रणय सेठी और अन्य**[3] में प्रतिपादित सिद्धांत के अनुसार क्षतिपूर्ति राशि बढ़ाए जाने एवं प्रार्थना-पत्र प्रस्तुति से ब्याज दिलाए जाने की प्रार्थना की गई है ।

---

[1] 1997(2) टी. ए. सी. 369 (बोम्बे).

[2] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 3104.

[3] (2017) 16 एस. सी. सी. 680.

7. योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी विभाग का क्रोस ओब्जेक्शन के रूप में तर्क रहा कि न्याय दृष्टांत **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रणय सेठी और अन्य** (उपरोक्त) प्रतिपादित सिद्धांत के अनुसार यदि अपीलार्थी को भविष्यवर्ती आय की मद में कोई राशि दिलाई जाती है तो उसी न्याय दृष्टांत की रोशनी में पारम्परिक मदों के तहत अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को स्नेह वंचना की मद में दिलाई गई राशि 25,000/- रुपए को कुल क्षतिपूर्ति राशि से कम किया जाए ।

8. दोनों पक्षों के योग्य अधिवक्तागण के तर्क सुने गए एवं विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय का अवलोकन किया गया ।

9. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी एवं प्रत्यर्थी ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित न्याय दृष्टांत **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रणय सेठी और अन्य** (उपरोक्त) की रोशनी में विभिन्न मदों में क्षतिपूर्ति राशि बढ़ाने व घटाने हेतु जो तर्क प्रस्तुत किए गए हैं, उन तर्कों की रोशनी में अपील को क्लेम आवेदन का निरंतरता/विस्तार मानते हुए घटना घटित होने के समय को मद्देनजर रखते हुए उक्त न्याय दृष्टांत में प्रतिपादित सिद्धांतों की रोशनी में वादपत्र में चाहे गए अनुतोष के अनुरूप राशि का निर्धारण निम्न प्रकार किया जाता है ।

आश्रितों को आय की हानि के क्रम में –

अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मृतक की आय की गणना न्यूनतम मजदूरी 166/- रुपए प्रतिदिन से 26 दिन की आय के आधार पर 4,316/- रुपए मासिक आय मानी गई है, जबकि इस न्यायालय की राय में मृतक के कार्य की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए 30 दिन की मजदूरी के आधार पर 4,980/- रुपए मासिक आय निर्धारित की जाती है ।

अधीनस्थ न्यायालय ने मृतक पर होने वाले खर्च के रूप में 1/4 भाग की कटौती करने एवं मृतक की आयु के आधार पर 17 का गुणक उपयोग में लिए जाने के क्रम में अधीनस्थ न्यायालय के निष्कर्ष को अपीलार्थी द्वारा कोई चुनौती नहीं दी गई है ।

इस प्रकार मृतक की घातक दुर्घटना में मृत्यु के परिणामस्वरूप आय की क्षति की गणना निम्न प्रकार की जाती है ।

मृतक की वार्षिक आय	4980×13 59,760
आयु के आधार पर गुणांक 17	$59,760 \times 17 = 10,15,920$

मृतक पर खर्च होने वाली	10,15,920 × 1/4 = 2,53,980
कटौती 1/4	
आय की क्षति की राशि	10,15,920-2,53,980 = 761,940

अधीनस्थ न्यायालय द्वारा आय की क्षति के मद में 6,60,348/- रुपए की राशि दिलाई गई है, जिसमें बढ़ोतरी करते हुए इस न्यायालय द्वारा आय की क्षति के मद में 7,61,940/- रुपए की राशि निर्धारित की जाती है ।

भविष्यवर्ती आय

जहां तक इस मद की क्षतिपूर्ति राशि का प्रश्न है, इस क्रम में ऊपर दिए गए विवेचन से आय की क्षति की मद में 7,61,940/- रुपए की राशि निर्धारित की गई है, ऐसी स्थिति में **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रणय सेठी और अन्य** (उपरोक्त) की रोशनी में मृतक की आयु 25 वर्ष होने एवं उसकी आय अनिश्चित होने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए आय की क्षति चालीस प्रतिशत राशि के मद में देय होगी, जो गणना करने पर 3,04,776/- रुपए होती है ।

मृतक की मत्यु के परिणामस्वरूप पारम्परिक मदों में प्रतिकर –

चूंकि न्याय दृष्टांत **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रणय सेठी और अन्य** (उपरोक्त) में प्रतिपादित सिद्धांतों की रोशनी में अपीलार्थी को भविष्यवर्ती आय की मद में राशि दिलाई गई है । ऐसी स्थिति में उक्त न्याय दृष्टांत में प्रतिपादित सिद्धांतों को सम्पूर्ण रूप से इस मामले में लागू किया जाना उचित है । अतः उक्त न्याय दृष्टांत की रोशनी में पारम्परिक मदों के तहत अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिलाए गए दाह संस्कार की मद में 10,000/- रुपए में वृद्धि करते हुए 15,000/- रुपए एवं मृतक की पत्नी सहजीवन क्षति की मद में दिलाए गए 10,000/- रुपए में वृद्धि करते हुए 40,000/- रुपए की राशि निर्धारित की जाकर इन मदों में प्रत्येक तीन वर्ष में दस प्रतिशत की वृद्धि किया जाना भी उचित है । वर्तमान मामले में घटना वर्ष 2013 की है, जिसको पांच वर्ष व्यतीत हो चुके हैं । अतः दाह संस्कार की मद में 16,500/- रुपए एवं सहजीवन की क्षति की मद में 44,000/- रुपए की राशि निर्धारित की जाती है ।

10. जहां तक मृतक के आश्रितों को मृतक के स्नेह वंचना में दिलाई गई राशि को क्षतिपूर्ति राशि से कम किए जाने के क्रम में योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी के तर्क का प्रश्न है, इस क्रम में इस न्यायालय के विनम्र मत में

पारस्परिक मद की परिभाषा यद्यपि न्याय दृष्टांत **राजेश** बनाम **राजबीर**[1] के मामले में विवेचित है तथा इसमें प्रेम व स्नेह की मद को पारस्परिक मद की श्रेणी में अंकित किया गया है, किन्तु न्याय दृष्टांत **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रणय सेठी और अन्य** (उपरोक्त) में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस मद को पारस्परिक मदों में नहीं माना गया है । ऐसी स्थिति में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा इस मद में दिलाई गई राशि को पारस्परिक मदों में नहीं माना जाकर इस मद में किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति राशि क्लेमेंट को दिलाया जाना उचित नहीं है ।

11. अतः अधीनस्थ न्यायालय द्वारा क्लेमेंट को दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि में उपरोक्तानुसार वृद्धि/कमी करते हुए निम्नानुसार क्षतिपूर्ति राशि क्लेमेंट प्राप्त करने के अधिकारी हैं :–

क्रम सं.	मद	क्षतिपूर्ति राशि
1.	आय की क्षति में	7,61,940/-
2.	भविष्य संभावनाओं की मद में	3,04,776/-
3.	प्रेम और स्नेह	कुछ नहीं
4.	दाह संस्कार व्यय	16,500/-
5.	सहजीवन की क्षति	44,000/-
	कुल राशि	11,27,216/-

12. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को क्षतिपूर्ति राशि 7,05,348/- रुपए दिलाई गई है, जिसमें उपरोक्तानुसार 4,21,868/- रुपए की बढ़ोतरी करते हुए कुल क्षतिपूर्ति राशि 11,27,216/- रुपए की जाती है । योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी की ओर से ब्याज के क्रम में प्रस्तुत उक्त न्याय दृष्टांत **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **प्रणय सेठी और अन्य** (उपरोक्त) और **राजेश** बनाम **राजबीर** (उपरोक्त) में प्रतिपादित सिद्धांतों की रोशनी में बढ़ी हुई क्षतिपूर्ति राशि ब्याज दर, ब्याज प्राप्त करने की तिथि तथा क्षतिपूर्ति राशि के आनुपातिक विवरण के क्रम में समस्त शर्तें अधीनस्थ न्यायालय के आदेशानुसार प्रभावी रहेंगी ।

13. तद्नुसार अपील निस्तारित की जाकर अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय में क्षतिपूर्ति राशि के क्रम में उपरोक्तानुसार संशोधन किया जाता है ।

---

[1] (2013) 9 एस. सी. सी. 54.

14. यह आदेश/निर्णय आज तारीख 29 सितम्बर, 2018 को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 348 (i) के तहत भारत सरकार की अधिसूचना राजपत्र संख्या 1, तारीख 2 जनवरी, 1999 एवं राजस्थान राजपत्र तारीख 10 मार्च, 1971 के तहत हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत किए जाने के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा में लिखाया गया ।

अपील मंजूर की गई ।

महीं./अवि.

संसद् के अधिनियम

विशेष विवाह अधिनियम, 1954

(1954 का अधिनियम संख्यांक 43)[1]

[9 अक्तूबर, 1954]

कुछ दशाओं में विशेष प्रकार के विवाह का, इस प्रकार के तथा कुछ अन्य विवाहों के रजिस्ट्रीकरण का और विवाह-विच्छेद का उपबन्ध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के पांचवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1
प्रारम्भिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ** – (1) यह अधिनियम विशेष विवाह अधिनियम, 1954 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है, और यह उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित भारत के उन नागरिकों को भी लागू है जो [2][जम्मू-कश्मीर राज्य में] है ।

(3) यह उस तारीख[3] को प्रवृत्त होगा जिसे केन्द्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

[4]* * * * * *

---

[1] इस अधिनियम का विस्तार 1963 के विनियम सं. 6 भी धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1-7-1965 से) दादरा और नागर हवेली पर तथा 1963 के विनियम सं. 7 के धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा पांडिचेरी पर विस्तारित किया गया ।

[2] 1969 के अधिनियम सं. 33 की धारा 29 द्वारा "उक्त राज्यक्षेत्रों के बाहर" शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1 जनवरी, 1955, भारत का राजपत्र, असाधारण, 1954, भाग 2, अनुभाग 3, पृ. 2463 की अधिसूचना सं. का. नि. आ. 3606, तारीख 17 दिसम्बर, 1954 देखिए ।

[4] 1969 के अधिनियम सं. 33 की धारा 29 द्वारा खंड (क) का लोप किया गया ।

(ख) "प्रतिषिद्ध कोटि की नातेदारी" – किसी पुरुष और प्रथम अनुसूची के भाग 1 में वर्णित व्यक्तियों में से किसी की तथा किसी स्त्री और उक्त अनुसूची के भाग 2 में वर्णित व्यक्तियों में से किसी की नातेदारी प्रतिषिद्ध कोटि की नातेदारी है ।

स्पष्टीकरण 1 – नातेदारी के अन्तर्गत –

(क) अर्ध या एकोदर रक्त की नातेदारी और पूर्ण रक्त की नातेदारी दोनों हैं ;

(ख) अधर्मज रक्त की नातेदारी और धर्मज रक्त की नातेदारी दोनों हैं ;

(ग) दत्तक नातेदारी और रक्त की नातेदारी दोनों हैं,

और इस अधिनियम में नातेदारी द्योतक सब पदों का तद्नुसार अर्थ किया जाएगा ।

स्पष्टीकरण 2 – "पूर्ण रक्त और अर्ध रक्त" – कोई दो व्यक्ति एक दूसरे से पूर्ण रक्त से सम्बन्धित तब कहे जाते हैं जब वे एक ही पूर्वज से एक ही पत्नी द्वारा अवजनित हों और अर्ध रक्त से सम्बन्धित तब कहे जाते हैं जब वे एक ही पूर्वज से किन्तु उसकी भिन्न पत्नियों द्वारा अवजनित हों ।

स्पष्टीकरण 3 – "एकोदर रक्त" – दो व्यक्ति एक दूसरे से एकोदर रक्त से सम्बन्धित तब कहे जाते हैं जब वे एक ही पूर्वजा से किन्तु भिन्न पतियों द्वारा अवजनित हों ।

स्पष्टीकरण 4 – स्पष्टीकरण 2 और 3 में "पूर्वज" के अन्तर्गत पिता और "पूर्वजा" के अन्तर्गत माता भी है ;

[1]* * * * *

(घ) विवाह अधिकारी के सम्बन्ध में "जिला" से वह क्षेत्र अभिप्रेत है जिसके लिए वह धारा 3 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन उस रूप में नियुक्त किया जाए ;

[2][(ङ) "जिला न्यायालय" से ऐसे किसी क्षेत्र में, जिसके लिए नगर सिविल न्यायालय है, वह न्यायालय और किसी अन्य क्षेत्र में

---

[1] 1969 के अधिनियम सं. 33 की धारा 29 द्वारा खण्ड (ग) का लोप किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धरा 20 द्वारा (27-5-1976 से) पूर्ववर्ती खण्ड के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

आरम्भिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय, अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत ऐसा कोई अन्य सिविल न्यायालय, भी है जिसे राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम में दिए गए विषयों के बारे में अधिकारिता रखने वाला विनिर्दिष्ट करे ;]

(च) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

[1][(छ) किसी संघ राज्यक्षेत्र के सम्बन्ध में "राज्य सरकार" से उसका प्रशासक अभिप्रेत है ।]

3. विवाह अधिकारी – (1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए राज्य सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, सम्पूर्ण राज्य या उसके किसी भाग के लिए एक या अधिक विवाह अधिकारी नियुक्त कर सकेगी ।

[2][(2) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित भारत के ऐसे नागरिकों को, जो जम्मू-कश्मीर राज्य में हों, लागू होने के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, केन्द्रीय सरकार के ऐसे अधिकारियों को, जिन्हें वह ठीक समझे, उस राज्य या उसके किसी भाग के लिए विवाह अधिकारियों के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकेगी ।]

अध्याय 2
विशेष विवाहों का अनुष्ठापन

4. विशेष विवाहों के अनुष्ठापन संबंधी शर्तें – विवाहों के अनुष्ठापन सम्बन्धी किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि में किसी बात के होते हुए भी, किन्हीं दो व्यक्तियों का इस अधिनियम के अधीन विवाह अनुष्ठापित किया जा सकेगा यदि उस विवाह के समय निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाती हैं, अर्थात् :–

(क) किसी पक्षकार का पति या पत्नी जीवित नहीं है ;

[3][(ख) दोनों पक्षकारों में से –

(i) कोई पक्षकार चित्त-विकृति के परिणामस्वरूप विधिमान्य

---

[1] विधि अनुकूलन (संख्यांक 3) आदेश, 1956 द्वारा मूल खण्ड के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1969 के अधिनियम सं. 33 की धारा 29 द्वारा उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 21 द्वारा (27-5-1976 से) पूर्ववर्ती खण्ड के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

सम्मति देने में असमर्थ नहीं है ; या

(ii) कोई पक्षकार विधिमान्य सम्मति देने में समर्थ होने पर भी इस प्रकार के या इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित नहीं रहा है कि वह विवाह और सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य है ; या

(iii) किसी पक्षकार की उन्मत्तता [1]*** का बार-बार दौरा नहीं पड़ता रहता है ;]

(ग) पुरुष ने इक्कीस वर्ष की आयु और स्त्री ने अठारह वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है ;

[2][(घ) पक्षकारों में प्रतिषिद्ध कोटि की नातेदारी नहीं है :

परंतु जहां कम से कम एक पक्षकार को शासित करने वाली रूढ़ि उनमें विवाह अनुज्ञात करे वहां ऐसा विवाह, उनमें प्रतिषिद्ध कोटि की नातेदारी होते हुए भी अनुष्ठापित किया जा सकेगा ; तथा]

[3][(ङ) जहां विवाह जम्मू-कश्मीर राज्य में अनुष्ठापित किया गया है वहां दोनों पक्षकार उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवासित भारत के नागरिक हैं ।]

[4][**स्पष्टीकरण** – इस धारा में किसी जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुम्ब के किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में "रूढ़ि" से कोई ऐसा नियम अभिप्रेत है जिसे राज्य सरकार उस जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुम्ब के सदस्यों को लागू नियम के रूप में, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे :]

परन्तु किसी जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुम्ब के सदस्यों के सम्बन्ध में ऐसी कोई अधिसूचना तब तक जारी नहीं की जाएगी जब तक राज्य सरकार का यह समाधान न हो जाए कि –

(i) उस नियम का अनुपालन उन सदस्यों में बहुत समय तक लगातार और एकरूपता के साथ होता रहा है ;

(ii) वह नियम निश्चित है और अयुक्तियुक्त या लोकनीति-

---

[1] 1999 के अधिनियम सं. 39 की धारा 3 द्वारा लोप किया गया ।

[2] 1969 के अधिनियम सं. 32 की धारा 2 द्वारा खण्ड (घ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1969 के अधिनियम सं. 33 की धारा 29 द्वारा खण्ड (ङ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1963 के अधिनियम सं. 32 की धारा 2 द्वारा अंतःस्थापित ।

विरुद्ध नहीं है ; तथा

(iii) वह नियम केवल कुटुम्ब को लागू होने की दशा में, उस कुटुम्ब द्वारा उसका अनुपालन बन्द नहीं किया गया है ।

5. आशयित विवाह की सूचना – जब किसी विवाह का इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापन आशयित हो तब विवाह के पक्षकार द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट प्ररूप में उसकी लिखित सूचना उस जिला के विवाह अधिकारी को देंगे जिसमें विवाह के पक्षकारों में से कम से कम एक ने उस सूचना के दिए जाने की तारीख से ठीक पहले तीस दिन से अन्यून की कालावधि तक निवास किया हो ।

6. विवाह-सूचना पुस्तक और प्रकाशन – (1) विवाह अधिकारी धारा 5 के अधीन दी गई सब सूचनाओं को अपने कार्यालय के अभिलेखों के साथ रखेगा और ऐसी प्रत्येक सूचना की एक सही प्रतिलिपि भी उस प्रयोजन के लिए विहित पुस्तक में, जो विवाह-सूचना पुस्तक कही जाएगी, तत्काल प्रविष्ट करेगा तथा ऐसी पुस्तक उसके निरीक्षण के इच्छुक व्यक्ति द्वारा बिना फीस के, निरीक्षण के लिए सभी उचित समयों पर उपलब्ध रहेगी ।

(2) विवाह अधिकारी प्रत्येक ऐसी सूचना का प्रकाशन उसकी एक प्रतिलिपि अपने कार्यालय के किसी सहज-दृश्य स्थान पर लगवाकर कराएगा ।

(3) जहां आशयित विवाह के पक्षकारों में से कोई उस विवाह अधिकारी के, जिसे धारा 5 के अधीन सूचना दी गई हो, जिले की स्थानीय सीमाओं के भीतर स्थायी रूप से निवास न करता हो वहां विवाह अधिकारी उस सूचना की प्रतिलिपि उस जिले के विवाह अधिकारी को भी भिजवाएगा जिसकी सीमाओं के भीतर ऐसा पक्षकार स्थायी रूप से निवास करता हो और तब वह विवाह अधिकारी उसकी प्रतिलिपि अपने कार्यालय के किसी सहज-दृश्य स्थान पर लगवाएगा ।

7. विवाह के प्रति आक्षेप – (1) धारा 6 की उपधारा (2) के अधीन सूचना के प्रकाशन की तारीख से तीस दिन की समाप्ति के पूर्व कोई व्यक्ति उस विवाह के प्रति इस आधार पर आक्षेप कर सकेगा कि वह धारा 4 में विनिर्दिष्ट किसी एक या अधिक शर्तों का उल्लंघन करेगा ।

(2) उस तारीख से, जब आशयित विवाह की सूचना धारा 6 की उपधारा (2) के अधीन प्रकाशित की गई हो, तीस दिन की समाप्ति के पश्चात् यह विवाह, जब तक उसके प्रति पहले ही उपधारा (1) के अधीन

आक्षेप नहीं कर दिया गया हो, अनुष्ठापित किया जा सकेगा ।

(3) आक्षेप की प्रकृति विवाह अधिकारी द्वारा विवाह-सूचना पुस्तक में लेखबद्ध की जाएगी, यदि आवश्यक हो तो आक्षेप करने वाले व्यक्ति को पढ़कर सुनाई और समझाई जाएगी और उस पर उस व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षर किए जाएंगे ।

8. आक्षेप के प्राप्त होने पर प्रक्रिया – (1) यदि आशयित विवाह के प्रति धारा 7 के अधीन आक्षेप किया जाता है तो विवाह अधिकारी वह विवाह तब तक अनुष्ठापित न करेगा जब तक वह उस आक्षेप के विषय में जांच न कर ले और उसका समाधान न हो जाए कि वह आक्षेप ऐसा नहीं है कि विवाह अनुष्ठापित न किया जाए या जब तक उस व्यक्ति द्वारा, जिसने आक्षेप किया हो, वह आक्षेप वापस न ले लिया जाए ; किन्तु विवाह अधिकारी आक्षेप के विषय में जांच करने और उसका विनिश्चय करने में आक्षेप की तारीख से तीस दिन से अधिक नहीं लगाएगा ।

(2) यदि विवाह अधिकारी आक्षेप को ठीक ठहराता है और उस विवाह को अनुष्ठापित करने से इनकार करता है तो आशयित विवाह का कोई पक्षकार ऐसे इनकार की तारीख से तीस दिन की कालावधि के भीतर उस जिला न्यायालय में अपील कर सकेगा जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर उस विवाह अधिकारी का कार्यालय हो और उस अपील में जिला न्यायालय का विनिश्चय अन्तिम होगा तथा विवाह अधिकारी उस न्यायालय के विनिश्चय के अनुरूप कार्य करेगा ।

9. जांच के बारे में विवाह अधिकारियों की शक्तियां – (1) धारा 8 के अधीन किसी जांच के प्रयोजन के लिए विवाह अधिकारी को निम्नलिखित विषयों, अर्थात् :–

(क) साक्षियों को समन करने और उनको हाजिर कराने तथा शपथ पर उनकी परीक्षा करने ;

(ख) प्रकटीकरण और निरीक्षण ;

(ग) दस्तावेजों पेश करने के लिए विवश करने ;

(घ) शपथ-पत्रों पर साक्ष्य लेने ; तथा

(ङ) साक्षियों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालने,

की बाबत, वही शक्तियां होंगी जो वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन

निहित होती हैं और विवाह अधिकारी के समक्ष कोई कार्यवाही भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 के अर्थ में न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी ।

स्पष्टीकरण – विवाह अधिकारी की अधिकारिता की स्थानीय सीमाएं ही किसी व्यक्ति को साक्ष्य देने के लिए हाजिर कराने के प्रयोजन के लिए उस अधिकारी के जिले की स्थानीय सीमाएं होंगी ।

(2) यदि विवाह अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि आशयित विवाह के प्रति किया गया आक्षेप उचित नहीं है और सद्भावपूर्वक नहीं किया गया है तो वह आक्षेप करने वाले व्यक्ति पर प्रतिकर के रूप में खर्चा अधिरोपित कर सकेगा, जो एक हजार रुपए से अधिक न होगा, और संपूर्ण राशि या उसका कोई भाग आशयित विवाह के पक्षकारों को दिलवा सकेगा तथा खर्चे के बारे में इस प्रकार दिया गया कोई आदेश उसी रीति से निष्पादित किया जा सकेगा जिससे उस जिला न्यायालय द्वारा पारित डिक्री की जाती हो जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर विवाह अधिकारी का कार्यालय हो ।

10. बाहर के विवाह अधिकारी को आक्षेप प्राप्त होने पर प्रक्रिया – जहां [1][जम्मू-कश्मीर राज्य में आशयित विवाह के बारे में] कोई आक्षेप उस राज्य में विवाह अधिकारी से धारा 7 के अधीन किया जाए और विवाह अधिकारी के मन में उस विषय में ऐसी जांच करने के पश्चात्, जैसी वह ठीक समझे, उस बाबत शंका बनी रहे वहां वह विवाह अनुष्ठापित नहीं करेगा, किन्तु उस विषय में ऐसे कथन के साथ जैसा वह ठीक समझे अभिलेख केन्द्रीय सरकार को भेजेगा और केन्द्रीय सरकार उस विषय में ऐसी जांच करने के पश्चात् और ऐसी सलाह अभिप्राप्त करने के पश्चात् जैसी वह ठीक समझे उस पर अपना विनिश्चय लिखित रूप में विवाह अधिकारी को देगी, जो केन्द्रीय सरकार के विनिश्चय के अनुरूप कार्य करेगा ।

11. पक्षकारों और साक्षियों द्वारा घोषणा – विवाह का अनुष्ठापन होने के पूर्व पक्षकार और तीन साक्षी इस अधिनियम की तृतीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट प्ररूप में घोषणा पर हस्ताक्षर विवाह अधिकारी की उपस्थिति में करेंगे तथा उस घोषणा पर विवाह अधिकारी प्रतिहस्ताक्षर करेगा ।

12. अनुष्ठापन का स्थान और रूप – (1) विवाह, विवाह अधिकारी के कार्यालय में या वहां से उचित दूरी के भीतर ऐसे अन्य स्थान पर, जैसा

---

[1] 1969 के अधिनियम सं. 33 की धारा 29 द्वारा कुछ शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

दोनों पक्षकार चाहें, और ऐसी शर्तों पर तथा ऐसी अतिरिक्त फीस देने पर, जिन्हें विहित किया जाए, अनुष्ठापित किया जा सकेगा ।

(2) विवाह किसी भी रूप में, जिसे पक्षकार अपनाना पसन्द करे, अनुष्ठापित किया जा सकेगा :

परन्तु जब तक प्रत्येक पक्षकार दूसरे पक्षकार से विवाह अधिकारी और तीन साक्षियों की उपस्थिति में तथा ऐसी भाषा में जिसे पक्षकार समझ सकें यह न कहे कि "मैं (क) तुम (ख) को अपनी विधिपूर्ण पत्नी स्वीकार करता हूं (या अपना विधिपूर्ण पति स्वीकार करती हूं)" तब तक वह पूर्ण और पक्षकारों पर आबद्धकर न होगा ।

13. विवाह का प्रमाणपत्र – (1) जब विवाह अनुष्ठापित हो जाए तब विवाह अधिकारी चतुर्थ अनुसूची में विनिर्दिष्ट प्ररूप में उसका प्रमाणपत्र उस प्रयोजन के लिए अपने द्वारा रखी गई पुस्तक में प्रविष्ट करेगा, जो विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक कही जाएगी, और ऐसे प्रमाणपत्र पर विवाह के पक्षकार और तीनों साक्षी हस्ताक्षर करेंगे ।

(2) विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक में विवाह अधिकारी द्वारा प्रमाणपत्र प्रविष्ट किए जाने पर वह प्रमाणपत्र इस तथ्य का निश्चायक साक्ष्य समझा जाएगा कि इस अधिनियम के अधीन विवाह अनुष्ठापित हो गया है तथा साक्षियों के हस्ताक्षरों के सम्बन्ध में सब प्ररूपिताओं का अनुपालन हो गया है ।

14. तीन मास के भीतर विवाह का अनुष्ठापन न होने पर नई सूचना का दिया जाना – जब किसी विवाह का अनुष्ठापन उस तारीख से, जब उसकी सूचना विवाह अधिकारी को धारा 5 द्वारा अपेक्षित रूप में दी गई हो, तीन कलैंडर मास के भीतर अथवा जहां धारा 8 की उपधारा (2) के अधीन अपील फाइल की गई हो वहां उस अपील पर जिला न्यायालय के विनिश्चय की तारीख से तीन मास के भीतर, अथवा जहां धारा 10 के अधीन किसी मामले का अभिलेख केन्द्रीय सरकार को भेजा गया हो वहां केन्द्रीय सरकार के विनिश्चय की तारीख से तीन मास के भीतर, नहीं होता, तब वह सूचना और उससे पैदा होने वाली सब अन्य कार्यवाहियां व्यपगत हुई समझी जाएंगी और जब तक इस अधिनियम में दी गई रीति से नई सूचना नहीं दी जाती, कोई विवाह अधिकारी उस विवाह का अनुष्ठापन नहीं करेगा ।

अध्याय 3
अन्य रूपों में अनुष्ठापित विवाहों का रजिस्ट्रीकरण

15. अन्य रूपों में अनुष्ठापित विवाहों का रजिस्ट्रीकरण – [1]विशेष विवाह अधिनियम, 1872 (1872 का 38) के अधीन या इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित विवाह से भिन्न विवाह, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित किया गया हो या उसके पश्चात् उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है विवाह अधिकारी द्वारा इस अध्याय के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया जा सकेगा यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाएं, अर्थात् :–

(क) पक्षकारों का परस्पर विवाह हो चुका है और वे तब से बराबर पति-पत्नी के रूप में साथ रह रहे हैं ;

(ख) किसी पक्षकार का एक से अधिक पति या पत्नी रजिस्ट्रीकरण के समय जीवित नहीं है ;

(ग) कोई पक्षकार रजिस्ट्रीकरण के समय जड़ या पागल नहीं है ;

(घ) पक्षकार रजिस्ट्रीकरण के समय 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके हैं ;

(ङ) पक्षकारों में प्रतिषिद्ध कोटि की नातेदारी नहीं है :

परंतु इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में यह शर्त पक्षकारों में से प्रत्येक को शासित करने वाली किसी ऐसी विधि के या विधि का बल रखने वाली रूढ़ि या प्रथा के अध्यधीन होगी जिससे उन दोनों में विवाह अनुज्ञात हो ; तथा

(च) पक्षकार उस विवाह अधिकारी के जिले के भीतर उस तारीख के ठीक पहले, जब विवाह के रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन विवाह अधिकारी से किया गया हो, कम से कम तीस दिन की कालावधि तक निवास करते रहे हैं ।

16. रजिस्ट्रीकरण के लिए प्रक्रिया – इस अध्याय के अधीन विवाह के रजिस्ट्रीकरण के लिए विवाह के दोनों पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित आवेदन की प्राप्ति पर विवाह अधिकारी उसकी लोक सूचना ऐसी रीति से देगा जैसी विहित की जाए और आक्षेपों के लिए तीस दिन की कालावधि

---

[1] इस अधिनियम की धारा 51 द्वारा निरसित ।

अनुज्ञात करने के पश्चात् तथा उस कालावधि के भीतर प्राप्त किसी आक्षेप को सुनने के पश्चात्, यदि उसका समाधान हो जाए कि धारा 15 में वर्णित सब शर्तें पूरी हो जाती हैं, तो वह विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक में विवाह का प्रमाणपत्र, उस प्ररूप में जो पंचम अनुसूची में विनिर्दिष्ट है प्रविष्ट करेगा और ऐसे प्रमाणपत्र पर विवाह के पक्षकार और तीनों साक्षी हस्ताक्षर करेंगे ।

17. धारा 16 के अधीन आदेशों से अपीलें – विवाह को इस अध्याय के अधीन रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार करने के विवाह अधिकारी के किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, उस आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर, उस आदेश के विरुद्ध अपील उस जिला न्यायालय में कर सकेगा जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर उस विवाह अधिकारी का कार्यालय हो और उस अपील पर उस जिला न्यायालय का विनिश्चय अन्तिम होगा तथा वह विवाह अधिकारी, जिससे आवेदन किया गया था, ऐसे विनिश्चय के अनुरूप कार्य करेगा ।

18. इस अध्याय के अधीन विवाह के रजिस्ट्रीकरण का प्रभाव – धारा 24 की उपधारा (2) के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए, जहां विवाह का प्रमाणपत्र, विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक में इस अध्याय के अधीन अन्तिम रूप से प्रविष्ट कर लिया गया हो वहां उस विवाह के बारे में ऐसी प्रविष्टि की तारीख से यह समझा जाएगा कि वह इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित विवाह है और विवाह की तारीख के पश्चात् पैदा हुई सब संतान के बारे में (जिनके नाम भी विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक में दर्ज किए जाएंगे) सब विषयों में यह समझा जाएगा कि वे अपने माता-पिता की धर्मज संतान हैं और सदैव रही हैं :

परंतु इस धारा की किसी बात का यह अर्थ नहीं लिया जाएगा कि वह किसी ऐसी संतान को अपने माता-पिता से भिन्न किसी व्यक्ति की सम्पत्ति में या उस पर कोई अधिकार किसी ऐसी दशा में प्रदान करती है जब ऐसी संतान ऐसा कोई अधिकार रखने या अर्जित करने के लिए इस अधिनियम के पारित न होने की दशा में इस कारण अयोग्य होती कि वह अपने माता-पिता की धर्मज संतान नहीं है ।

अध्याय 4
इस अधिनियम के अधीन विवाह के परिणाम

19. अविभक्त कुटुम्ब के सदस्य पर विवाह का प्रभाव – अविभक्त कुटुम्ब के ऐसे सदस्य के, जो हिन्दू, बौद्ध, सिख या जैन धर्म को मानता

हो, इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित विवाह के बारे में यह समझा जाएगा कि वह उसे उस कुटुम्ब से पृथक् कर देता है ।

20. अधिकारों और निर्योग्यताओं का अधिनियम द्वारा प्रभावित न होना – धारा 19 के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए, कोई व्यक्ति, जिसका विवाह इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित हो, किसी संपत्ति पर उत्तराधिकार के बारे में वही अधिकार रखेगा और उन्हीं निर्योग्यताओं के अध्यधीन होगा जो वह व्यक्ति रखता या जिनके अध्यधीन वह व्यक्ति होता जिसे जाति निर्योग्यता निवारण अधिनियम, 1850 (1850 का 21) लागू होता ।

21. अधिनियम के अधीन विवाहित पक्षकारों की संपत्ति का उत्तराधिकार – भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) में कुछ समुदायों के सदस्यों को उसके लागू होने के सम्बन्ध में किन्हीं निर्बन्धनों के होते हुए भी, किसी ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति का, जिसका विवाह इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित हुआ हो, और ऐसे विवाह की संतान की सम्पत्ति का उत्तराधिकार, उक्त अधिनियम के उपबन्धों द्वारा विनियमित होगा और वह अधिनियम इस धारा के प्रयोजनों के लिए इस प्रकार प्रभावी होगा मानो भाग 5 के अध्याय 3 (पारसी निर्वसीयतों के लिए विशेष नियम) का उससे लोप कर दिया गया हो ।

[1][**21क. कतिपय मामलों में विशेष उपबन्ध** – जहां किसी ऐसे व्यक्ति का, जो हिन्दू, बौद्ध, सिख या जैन धर्मावलम्बी है, विवाह इस अधिनियम के अधीन किसी ऐसे व्यक्ति के साथ अनुष्ठापित होता है, जो हिन्दू, बौद्ध, सिख या जैन धर्मावलम्बी है, वहां धारा 19 और धारा 21 लागू नहीं होगी और धारा 20 का वह भाग भी लागू नहीं होगा जिससे अयोग्यता सृजित होती है ।]

अध्याय 5
दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन और न्यायिक पृथक्करण

22. दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन – जब पति या पत्नी ने अपने को दूसरे के साहचर्य से उचित कारण के बिना अलग कर लिया हो तब व्यथित पक्षकार दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए जिला न्यायालय में आवेदन, अर्जी द्वारा कर सकेगा और न्यायालय उस अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में तथा इस बारे में कि आवेदन को मंजूर न

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 22 द्वारा (27-5-1976 से) अन्तःस्थापित ।

करने का कोई वैध आधार नहीं है, अपना समाधान हो जाने पर तद्नुसार दाम्पत्य अधिकारों की प्रत्यास्थापन डिक्री कर सकेगा ।

[1][**स्पष्टीकरण** – जहां यह प्रश्न उठता है कि क्या साहचर्य से अलग होने के लिए उचित कारण है वहां उचित कारण साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जो साहचर्य से अलग हुआ है ।]

23. न्यायिक पृथक्करण – (1) न्यायिक पृथक्करण के लिए अर्जी पति या पत्नी द्वारा –

(क) [2][धारा 27 की उपधारा (1) [3][और उपधारा (1क)] में] विनिर्दिष्ट आधारों में से किसी आधार पर, जिस पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश की जा सकती हो ; अथवा

(ख) दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री का अनुपालन करने में असफलता के आधार पर,

जिला न्यायालय में पेश की जा सकेगी और न्यायालय उस अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में तथा इस बारे में कि आवेदन को मंजूर न करने का कोई वैध आधार नहीं है, अपना समाधान हो जाने पर तद्नुसार न्यायिक पृथक्करण डिक्री कर सकेगा ।

(2) जहां न्यायालय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री दे वहां अर्जीदार प्रत्यर्थी के साथ सहवास करने के लिए बाध्य नहीं होगा किन्तु किसी पक्षकार के अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा उस अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर वह डिक्री को, जब वह ऐसा करना न्यायसंगत और उचित समझे, विखंडित कर सकेगा ।

अध्याय 6
विवाह की अकृतता और विवाह-विच्छेद

24. शून्य विवाह – (1) इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित विवाह अकृत और शून्य होगा [4][और विवाह के किसी पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के विरुद्ध पेश की गई अर्जी पर] अकृतता की डिक्री द्वारा [4][ऐसा घोषित किया जा सकेगा,] यदि –

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 23 द्वारा जोड़ा गया ।

[2] 1970 के अधिनियम सं. 29 की धारा 2 द्वारा कुछ शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 24 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 25 द्वारा कुछ शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(i) धारा 4 के खण्ड (क), (ख), (ग) और (घ) में विनिर्दिष्ट शर्तों में से कोई पूरी न की गई हो, अथवा

(ii) प्रत्यर्थी विवाह के समय और वाद संस्थित किए जाने के समय नपुंसक रहा हो ।

(2) इस धारा की कोई बात किसी ऐसे विवाह को लागू न होगी जिसके बारे में धारा 18 के अर्थ में यह समझा जाए कि वह इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित किया गया, किन्तु ऐसे किसी विवाह का अध्याय 3 के अधीन रजिस्ट्रीकरण, यदि वह धारा 15 के खण्ड (क) से खण्ड (ङ) तक में विनिर्दिष्ट शर्तों में से किसी के उल्लंघन में किया गया हो तो, प्रभावहीन घोषित किया जा सकेगा :

परंतु ऐसी घोषणा उस दशा में नहीं की जाएगी जब धारा 17 के अधीन अपील की गई हो और जिला न्यायालय का विनिश्चय अन्तिम हो गया हो ।

25. शून्यकरणीय विवाह – इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित विवाह शून्यकरणीय होगा और अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल किया जा सकेगा यदि –

(i) प्रत्यर्थी के विवाहोत्तर संभोग से जानबूझकर इनकार के कारण विवाहोत्तर संभोग नहीं हो पाया हो ; अथवा

(ii) प्रत्यर्थी विवाह के समय अर्जीदार से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा गर्भवती थी ; अथवा

(iii) विवाह के लिए किसी पक्षकार की सम्मति भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9) में यथा परिभाषित प्रपीड़न या कपट द्वारा अभिप्राप्त की गई हो :

परंतु खण्ड (ii) में विनिर्दिष्ट दशा में न्यायालय तब तक डिक्री नहीं देगा जब तक उसका यह समाधान न हो जाए कि –

(क) अर्जीदार अभिकथित तथ्यों से विवाह के समय अनभिज्ञ था ;

(ख) कार्यवाही विवाह की तारीख से एक वर्ष के भीतर संस्थित कर दी गई थी ; तथा

(ग) अर्जीदार की सम्मति से वैवाहिक संभोग डिक्री के

लिए आधारों के अस्तित्व का पता अर्जीदार को चल जाने के समय से नहीं हुआ है :

परंतु यह और कि खण्ड (iii) में विनिर्दिष्ट दशा में न्यायालय डिक्री न देगा यदि –

(क) कार्यवाही, यथास्थिति, प्रपीड़न के बन्द हो जाने या कपट का पता चलने के पश्चात् एक वर्ष के भीतर संस्थित न कर दी गई हो ; अथवा

(ख) अर्जीदार, यथास्थिति, प्रपीड़न बन्द हो जाने या कपट का पता चलने के पश्चात् अपनी स्वतन्त्र सम्मति से विवाह के दूसरे पक्षकार के साथ पति या पत्नी के रूप में रहा या रही हो ।

[1][**26. शून्य और शून्यकरणीय विवाह की संतान की धर्मजता** – (1) इस बात के होते हुए भी कि विवाह धारा 24 के अधीन अकृत और शून्य है, ऐसे विवाह की कोई संतान धर्मज होगी, जो विवाह के विधिमान्य होने की दशा में धर्मज होती, चाहे ऐसी सन्तान का जन्म विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारम्भ से पूर्व या पश्चात् हुआ हो और चाहे उस विवाह के सम्बन्ध में अकृतता की डिक्री इस अधिनियम के अधीन मंजूर की गई हो या नहीं और चाहे वह विवाह इस अधिनियम के अधीन अर्जी से भिन्न आधार पर शून्य अभिनिर्धारित किया गया हो या नहीं ।

(2) जहां धारा 25 के अधीन शून्यकरणीय विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री मंजूर की जाती है वहां डिक्री की जाने के पूर्व जनित या गर्भाहित ऐसी कोई संतान, जो यदि विवाह डिक्री की तारीख को अकृत किए जाने के बजाय विघटित कर दिया गया होता तो विवाह के पक्षकारों की धर्मज संतान होती, अकृतता की डिक्री होते हुए भी उनकी धर्मज संतान समझी जाएगी ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसे विवाह की किसी संतान को, जो अकृत और शून्य है या जिसे धारा 25 के अधीन अकृतता की डिक्री द्वारा अकृत किया गया है, उसके माता-पिता से भिन्न किसी व्यक्ति की संपत्ति में या संपत्ति के लिए कोई अधिकार किसी ऐसी दशा में प्रदान करती है जिसमें कि यदि

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 26 द्वारा (27-5-1976 से) धारा 26 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो वह संतान अपने माता-पिता की धर्मज संतान न होने के कारण ऐसा कोई अधिकार रखने या अर्जित करने में असमर्थ होती ।]

27. विवाह-विच्छेद – [1][(1)] इस अधिनियम के उपबंधों और तद्धीन बनाए गए नियमों के अध्यधीन रहते हुए विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी जिला न्यायालय में पति या पत्नी द्वारा इस आधार पर पेश की जा सकेगी कि –

[2][(क) प्रत्यर्थी ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है ; अथवा

(ख) प्रत्यर्थी ने अर्जी के पेश किए जाने के ठीक पहले कम से कम दो वर्ष की निरन्तर कालावधि भर अर्जीदार को अभित्यक्त रखा है ; अथवा]

(ग) प्रत्यर्थी भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) में यथा परिभाषित अपराध के लिए सात वर्ष या उससे अधिक के कारावास का दण्ड भोग रहा है ;

[3]* * * * * * * *

(घ) प्रत्यर्थी ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अर्जीदार से क्रूरता का व्यवहार किया है ; अथवा

[4][(ङ) प्रत्यर्थी असाध्य रूप से विकृत-चित्त रहा है अथवा निरन्तर या आंतरायिक रूप से इस प्रकार के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे ।

स्पष्टीकरण – (क) इस खण्ड में, –

"मानसिक विकार" पद से मानसिक बीमारी, मस्तिष्क का संरोध या अपूर्ण विकास, मनोविकृति या मस्तिष्क का कोई अन्य

---

[1] 1970 के अधिनियम सं. 29 की धारा 3 द्वारा धारा 27 को उसकी उपधारा (1) के रूप में पुन:संख्यांकित किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 27 द्वारा खण्ड (क) और खण्ड (ख) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 27 द्वारा परंतुक का लोप किया गया ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 27 द्वारा खण्ड (27-5-1976 से) खण्ड (ङ) और (च) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

विकार या निःशक्तता अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत विखंडित मनस्कता है ;

(ख) "मनोविकृति" पद से मस्तिष्क का दीर्घ स्थायी विकार या निःशक्तता (चाहे इसमें बुद्धि की असामान्यता हो या नहीं) अभिप्रेत है जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी का आचरण असामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से अनुत्तरदायी हो जाता है और चाहे उसके लिए चिकित्सीय उपचार अपेक्षित हो या नहीं अथवा ऐसा उपचार किया जा सकता हो या नहीं ; अथवा

(च) प्रत्यर्थी संचारी रूप के रतिज रोग से पीड़ित रहा है ; अथवा]

(छ) [1]**** प्रत्यर्थी कुष्ठ से पीड़ित रहा है जो रोग उसे अर्जीदार से नहीं लगा था ; अथवा

(ज) प्रत्यर्थी के बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि में उन व्यक्तियों द्वारा, जिन्होंने प्रत्यर्थी के बारे में, यदि वह जीवित होता तो, स्वभाविकतया सुना होता, यह नहीं सुना गया है कि वह जीवित है ।][2]* * *

[2]* * * * * * * *

[3][**स्पष्टीकरण** – इस उपधारा में "अभित्यजन" पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जो, उचित हेतुक के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरुद्ध हो और इसके अन्तर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार की जानबूझकर उपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूपभेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तद्नुसार लगाए जाएंगे ।]

[4]* * * * * * * *

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 27 द्वारा खण्ड (27-5-1976 से) कुछ शब्दों का लोप किया गया ।

[2] 1970 के अधिनियम सं. 29 की धारा 3 द्वारा "या" शब्द और खण्ड (झ) और (ञ) का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 27 द्वारा (27-5-1976 से) अंतःस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 27 द्वारा कुछ शब्दों का लोप किया गया ।

[1][(1क) पत्नी भी विवाह-विच्छेद के लिए निम्नलिखित आधार पर जिला न्यायालय में अर्जी पेश कर सकेगी –

(i) कि उसका पति विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् बलात्कार, गुदा-मैथुन या पशुगमन का दोषी हुआ है ;

(ii) कि हिन्दू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78) की धारा 18 के अधीन वाद में या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 के अधीन [या दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) की तत्समान धारा 488 के अधीन] कार्यवाही में, पत्नी को भरण-पोषण दिलवाने के लिए, पति के विरुद्ध, यथास्थिति, डिक्री या आदेश इस बात के होते हुए भी पारित किया गया है कि वह अलग रहती थी और ऐसी डिक्री या आदेश के पारित किए जाने के समय से एक वर्ष या ऊपर की कालावधि भर उन पक्षकारों के बीच सहवास का पुनरारंभ नहीं हुआ है ।]

[2][(2) इस अधिनियम के उपबंधों और तद्धीन बनाए गए नियमों के अध्यधीन रहते हुए, विवाह का, जो चाहे विशेष विवाह (संशोधन) अधिनियम, 1970 के प्रारम्भ के पूर्व अनुष्ठापित किया गया हो या, उसके पश्चात् कोई पक्षकार विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी जिला न्यायालय में इस आधार पर पेश कर सकेगा कि –

(i) ऐसी कार्यवाही में, जिसके वे पक्षकार थे, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् एक वर्ष या उससे अधिक की कालावधि तक विवाह के पक्षकारों के बीच सहवास का पुनरारंभ नहीं हुआ है ; अथवा

(ii) ऐसी कार्यवाही में जिसके वे पक्षकार थे, दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् एक वर्ष या उससे अधिक की कालावधि तक विवाह के पक्षकारों के बीच दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन नहीं हुआ है ।]

[3][**27क. विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में वैकल्पिक अनुतोष** – इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 27 द्वारा (27-5-1976 से) अंतःस्थापित ।

[2] 1970 के अधिनियम सं. 29 की धारा 3 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 28 द्वारा (27-5-1976 से) अंतः स्थापित ।

विवाह के विघटन के लिए अर्जी पर, उस दशा को छोड़कर जिसमें अर्जी धारा 27 की उपधारा (1) के खण्ड (ज) में वर्णित आधार पर है, यदि न्यायालय मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायसंगत समझता है तो, वह विवाह-विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक-पृथक्करण के लिए डिक्री पारित कर सकेगा ।]

28. पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद – (1) इस अधिनियम के उपबंधों और तद्धीन बनाए गए नियमों के अध्यधीन रहते हुए, दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी जिला न्यायालय में इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक से अलग-अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह विघटित कर देना चाहिए ।

(2) [1][उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह मास के पश्चात् और अठारह मास के भीतर दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर] यदि इस बीच में अर्जी वापस न ले ली गई हो तो, जिला न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच, जैसी वह ठीक समझे, करने के पश्चात् अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्राक्कथन सही हैं, यह घोषणा करने वाली डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा ।

29. विवाह के पश्चात् प्रथम तीन वर्षों के दौरान विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी देने पर निर्बंधन – (1) विवाह-विच्छेद के लिए कोई अर्जी जिला न्यायालय में तब तक पेश न की जाएगी [2][जब तक अर्जी पेश किए जाने की तारीख तक उस तारीख से एक वर्ष व्यतीत न हो गया हो] जब विवाह का प्रमाणपत्र विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक में प्रविष्ट किया गया था :

परंतु जिला न्यायालय अपने से आवेदन किए जाने पर कोई अर्जी [2][एक वर्ष व्यतीत होने से पहले] पेश करने की अनुज्ञा इस आधार पर दे सकेगा कि वह मामला अर्जीदार द्वारा असाधारण कष्ट भोगे जाने का या प्रत्यर्थी की असाधारण दुराचारिता का है ; किन्तु यदि जिला न्यायालय को अर्जी की सुनवाई से यह प्रतीत हो कि अर्जीदार ने अर्जी पेश करने की

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 29 द्वारा खण्ड (27-5-1976 से) कुछ शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 30 द्वारा कुछ शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

इजाजत किसी दुर्व्यपदेशन द्वारा या मामले की प्रकृति को छिपाने द्वारा अभिप्राप्त की थी तो जिला न्यायालय डिक्री देने की दशा में इस शर्त के अध्यधीन ऐसा कर सकेगा कि डिक्री तब तक प्रभावी न होगी जब तक विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष का अवसान] न हो जाए, अथवा उस अर्जी को, किसी अन्य ऐसी अर्जी पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, खारिज कर सकेगा जो [1][उक्त एक वर्ष के अवसान] के पश्चात् उन्हीं या सारतः उन्हीं तथ्यों पर दी जाए जो ऐसे खारिज की गई अर्जी के समर्थन में साबित किए गए ।

(2) विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष के अवसान] के पहले विवाह-विच्छेद की अर्जी पेश करने की इजाजत के लिए इस धारा के अधीन आवेदन का निपटारा करने में जिला न्यायालय उस विवाह से उत्पन्न किसी संतान के हितों का तथा इस बात का ध्यान रखेगा कि क्या पक्षकारों के बीच [2][उक्त एक वर्ष] के अवसान के पहले पुनर्मिलाप की कोई उचित अधिसंभाव्यता है ।

30. विच्छिन्न विवाह व्यक्तियों का पुनर्विवाह – जब विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटित कर दिया गया हो और या तो डिक्री के विरुद्ध अपील करने का कोई अधिकार न हो या अपील का ऐसा अधिकार होने की दशा में अपील करने के समय का अवसान अपील पेश किए गए बिना हो गया हो या अपील पेश की गई हो किन्तु खारिज कर दी गई हो, [3]*** विवाह का कोई पक्षकार पुन: विवाह कर सकेगा ।

अध्याय 7
अधिकारिता और प्रक्रिया

31. वह न्यायालय जिसमें अर्जी दी जानी चाहिए – [4][(1)] अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन प्रत्येक अर्जी उस जिला न्यायालय में पेश की जाएगी जिसकी आरम्भिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर, –

(i) विवाह का अनुष्ठापन हुआ था ; या

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 30 द्वारा कुछ शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 29 द्वारा (27-5-1976 से) कुछ शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 31 द्वारा कुछ शब्दों का लोप किया गया ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 32 द्वारा उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ii) प्रत्यर्थी, अर्जी के पेश किए जाने के समय, निवास करता है ; या

(iii) विवाह के पक्षकारों ने अंतिम बार एक साथ निवास किया था ; या

[1][(iiik) यदि पत्नी अर्जीदार है तो वहां अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रही है ; या

(iv) अर्जीदार अर्जी के पेश किए जाने के समय निवास कर रहा है, यह ऐसे मामले में, जिसमें प्रत्यर्थी उस समय ऐसे राज्यक्षेत्र के बाहर निवास कर रहा है जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है अथवा वह जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है, जिन्होंने उसके बारे में, यदि वह जीवित होता तो, स्वाभाविकतया सुना होता ।]

(2) न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अधीन प्रयोक्तव्य अधिकारिता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि जिला न्यायालय विवाह की अकृतता के लिए या विवाह-विच्छेद के लिए पत्नी द्वारा दी गई अर्जी इस उपधारा के आधार पर ग्रहण कर सकेगा यदि वह उन राज्यक्षेत्रों में अधिवासित हो जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है और वह उक्त राज्यक्षेत्रों में निवास करती हो तथा विवाह की अकृतता या विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश करने के ठीक पहले तीन वर्ष की कालावधि तक वहां मामूली तौर पर निवास करती रही हो और पति उक्त राज्यक्षेत्रों में निवास न करता हो ।

32. अर्जियों की अन्तर्वस्तु और सत्यापन – (1) अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन प्रत्येक अर्जी उन सब तथ्यों का, जिन पर अनुतोष का दावा आधारित हो, कथन इतने स्पष्ट तौर पर करेगी जितना उस मामले में हो सके और वह यह कथन भी करेगी कि अर्जीदार और विवाह के दूसरे पक्षकार के बीच दुस्संधि नहीं है ।

(2) प्रत्येक ऐसी अर्जी में अन्तर्विष्ट कथन अर्जीदार द्वारा या किसी अन्य सक्षम व्यक्ति द्वारा उस रीति से सत्यापित किए जाएंगे जो वादपत्रों के सत्यापन के लिए विधि द्वारा अपेक्षित है और सुनवाई में साक्ष्य के रूप में निर्दिष्ट किए जा सकेंगे ।

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 50 की धारा 2 द्वारा अंतःस्थापित ।

[1][**33. कार्यवाहियों का बंद कमरे में होना और उन्हें मुद्रित या प्रकाशित न किया जाना** – (1) इस अधिनियम के अधीन हर कार्यवाही बन्द कमरे में की जाएगी और किसी व्यक्ति के लिए ऐसी किसी कार्यवाही के संबंध में किसी बात को मुद्रित या प्रकाशित करना विधिपूर्ण नहीं होगा किन्तु उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के उस निर्णय को छोड़कर जो उस न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा से मुद्रित या प्रकाशित किया गया है ।

(2) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के उपबंधों के उल्लंघन में कोई बात मुद्रित या प्रकाशित करेगा तो वह ऐसे जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा ।]

34. डिक्रियां पारित करने में न्यायालय का कर्तव्य – (1) अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन की किसी कार्यवाही में, चाहे उसमें प्रतिरक्षा की गई हो या नहीं, यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि –

(क) अनुतोष अनुदत्त करने के आधारों में से कोई आधार विद्यमान है ; तथा

(ख) [2][जहां अर्जी धारा 27 की उपधारा (1) के खंड (क) में विनिर्दिष्ट आधार पर है वहां अर्जीदार उसमें निर्दिष्ट मैथुन कार्य में न तो किसी प्रकार उपसाधक रहा है, न उसकी उसमें मौनानुकूलता है और न उसने उसका उपमर्षण किया है] अथवा जहां अर्जी का आधार क्रूरता है वहां अर्जीदार ने क्रूरता का किसी तरह उपमर्षण नहीं किया है ; तथा

(ग) जब विवाह-विच्छेद पारस्परिक सम्मति के आधार पर चाहा गया है तब ऐसी सम्मति बल, कपट या असम्यक् असर से अभिप्राप्त नहीं की गई है ; तथा

(घ) अर्जी प्रत्यर्थी के साथ दुस्संधि करके पेश या अभियोजित नहीं की गई है ; तथा

(ङ) कार्यवाही संस्थित करने में कोई अनावश्यक या अनुचित विलम्ब नहीं हुआ है ; तथा

(च) अनुतोष अनुदत्त न करने के लिए कोई वैध आधार नहीं है,

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 33 द्वारा (27.5.1976 से) धारा 33 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 34 द्वारा (27.5.1976 से) अंतःस्थापित ।

तो और ऐसी दशा में न्यायालय तद्नुसार ऐसा अनुतोष डिक्री करेगा, अन्यथा नहीं ।

(2) इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष अनुदत्त करने के लिए अग्रसर होने के पूर्व न्यायालय का सबसे पहले यह कर्तव्य होगा कि वह प्रत्येक ऐसे मामले में, जिसमें मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत रूप से ऐसा करना संभव हो, पक्षकारों में पुन: मिलाप कराने के लिए प्रत्येक प्रयास करे :

[1][परन्तु इस धारा की कोई बात किसी ऐसी कार्यवाही को लागू नहीं होगी जिसमें धारा 27 की उपधारा (1) के खंड (ग), खंड (ङ), खंड (च), खंड (छ) और खंड (ज) में निर्दिष्ट आधारों में से किसी आधार पर अनुतोष चाहा गया है ।]

[2][(3) ऐसा मेल-मिलाप करने में न्यायालय की सहायता के प्रयोजन के लिए न्यायालय, यदि पक्षकार चाहे तो या यदि न्यायालय ऐसा करना न्यायसंगत और उचित समझे तो, कार्यवाहियों को पन्द्रह दिन से अनधिक की युक्तियुक्त कालावधि के लिए स्थगित कर सकेगा और उस मामले को पक्षकारों द्वारा इस निमित्त नामित किसी व्यक्ति को या यदि पक्षकार कोई व्यक्ति नामित करने में असफल रहते हैं तो न्यायालय द्वारा नामनिर्देशित किसी व्यक्ति को इन निदेशों के साथ निदेशित कर सकेगा कि वह न्यायालय को इस बारे में रिपोर्ट दे कि मेल-मिलाप कराया जा सकता है या नहीं और करा दिया गया है या नहीं और न्यायालय कार्यवाही का निपटारा करने में ऐसी रिपोर्ट को सम्यक् रूप से ध्यान में रखेगा ।

(4) ऐसे प्रत्येक मामले में, जिसमें विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद द्वारा होता है, डिक्री पारित करने वाला न्यायालय प्रत्येक पक्षकार को उसकी प्रति मुफ्त देगा ।]

[3][**35. विवाह-विच्छेद और अन्य कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को अनुतोष** – विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी कार्यवाही में प्रत्यर्थी अर्जीदार के जारकर्म, क्रूरता या

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 34 द्वारा (27-5-1976 से) कुछ शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 34 द्वारा (27-5-1976 से) अंत:स्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 35 द्वारा (27-5-1976 से) धारा 35 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

अभित्यजन के आधार पर चाहे गए अनुतोष का न केवल विरोध कर सकेगा बल्कि वह उस आधार पर इस अधिनियम के अधीन किसी अनुतोष के लिए प्रतिदावा भी कर सकेगा और यदि अर्जीदार का जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन साबित हो जाता है तो न्यायालय प्रत्यर्थी को इस अधिनियम के अधीन कोई ऐसा अनुतोष दे सकेगा जिसके लिए वह उस दशा में हकदार होता या होती जिसमें उसने उस आधार पर ऐसे अनुतोष की मांग करते हुए अर्जी पेश की होती ।]

36. वादकालीन निर्वाहिका – जहां अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन किसी कार्यवाही में जिला न्यायालय को यह प्रतीत हो कि पत्नी की कोई ऐसी स्वतंत्र आय नहीं है जो उसकी संभाल और उसके आवश्यक व्ययों के लिए पर्याप्त हो वहां यह पत्नी के आवेदन पर पति को आदेश दे सकेगा कि वह पत्नी को कार्यवाही में पड़ने वाले व्यय तथा कार्यवाही के दौरान ऐसी साप्ताहिक या मासिक राशि दे जो पति की आय को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को उचित प्रतीत हो :

[1][परन्तु कार्यवाही के व्ययों और अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन कार्यवाही के दौरान ऐसी साप्ताहिक या मासिक राशि के संदाय के लिए आवेदन को यथासंभव, पति पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

37. स्थायी निर्वाहिका और भरणपोषण – (1) अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा कोई न्यायालय डिक्री पारित करते समय या डिक्री के पश्चात् किसी समय, उस प्रयोजन के लिए अपने से आवेदन किए जाने पर यह आदेश कर सकेगा कि पति, पत्नी के भरणपोषण और संभाल के लिए, यदि आवश्यक हो तो पति की सम्पति पर प्रभार द्वारा, ऐसी सकल राशि अथवा ऐसी मासिक या कालिक राशि पत्नी को जीवनकाल से अनधिक अवधि के लिए प्राप्त कराए जैसी स्वयं पत्नी की संपत्ति को, यदि कोई हो, उसके पति की संपत्ति और सामर्थ्य को और [2][पक्षकारों के आचरण तथा मामले की अन्य परिस्थितियों को] ध्यान में रखते हुए न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो ।

(2) यदि जिला न्यायालय का समाधान हो जाए कि उसके उपधारा (1) के अधीन आदेश करने के पश्चात् किसी समय पक्षकारों में से किसी

---

[1] 2001 के अधिनियम सं. 49 की धारा 6 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 36 द्वारा कुछ शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

की परिस्थितियों में तब्दीली हो गई हो तो वह किसी पक्षकार की प्रेरणा पर, ऐसी रीति से जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो, ऐसे किसी आदेश में फेरफार या उपान्तर कर सकेगा या उसे विखंडित कर सकेगा ।

(3) यदि जिला न्यायलय का समाधान हो जाए कि पत्नी से, जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन आदेश दिया गया, पुनर्विवाह कर लिया है या सती जीवन नहीं बिता रही है [1][तो वह पति की प्रेरणा पर और ऐसी रीति में, जो न्यायालय न्यायसंगत समझे, ऐसे किसी आदेश को परिवर्तित, उपान्तरित या विखंडित कर सकेगा] ।

38. संतान की अभिरक्षा – अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन की किसी कार्यवाही में जिला न्यायालय अवयस्क संतान की अभिरक्षा, भरणपोषण और शिक्षा के बारे में जहां संभव हो वहां उनकी इच्छा से संगत, समय-समय पर, ऐसे अन्तरिम आदेश पारित कर सकेगा और डिक्री में ऐसे उपबंध कर सकेगा जो उसे न्यायसंगत और उचित प्रतीत हों और डिक्री के पश्चात्, इस प्रयोजन के लिए अर्जी द्वारा किए गए आवेदन पर ऐसी संतान की अभिरक्षा, भरणपोषण और शिक्षा के बारे में, समय-समय पर, सब ऐसे आदेश और उपबंध कर सकेगा, प्रतिसंहृत कर सकेगा या निलम्बित कर सकेगा या उनमें फेरफार कर सकेगा जैसे यदि ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए कार्यवाही लम्बित होती तो ऐसी डिक्री या अंतरिम आदेशों द्वारा किए जा सकते :

[2][परन्तु कार्यवाही के दौरान अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन अवयस्क संतान के भरणपोषण और शिक्षा की बाबत आवेदन को यथासंभव, प्रत्यर्थी पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

[3][**39. डिक्रियों और आदेशों की अपीलें** – (1) अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियां, उपधारा (3) के उपबंधों के अध्यधीन उसी प्रकार अपीलनीय होंगी जैसे उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्री अपीलनीय होती है और ऐसी अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 36 द्वारा कुछ शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 2001 के अधिनियम सं. 49 की धारा 7 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 37 द्वारा (27-5-1976 से) धारा 39 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें, सामान्यत: होती हैं ।

(2) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा धारा 37 या धारा 38 के अधीन किए गए आदेश, उपधारा (3) के उपबंधों के अध्यधीन, तभी अपीलनीय होंगे जब ये अंतरिम आदेश न हों और ऐसी प्रत्येक अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यत: होती हैं ।

(3) केवल खर्चे के विषय में कोई अपील इस धारा के अधीन नहीं होगी ।

(4) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील डिक्री या आदेश की तारीख से [1][नब्बे दिन की कालावधि] के अन्दर की जाएगी ।

39क. डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन – अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन उसी प्रकार किया जाएगा जिस प्रकार उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्रियों और आदेशों का तत्समय प्रवर्तन किया जाता है ।]

40. 1908 के अधिनियम 5 का लागू होना – इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के और ऐसे नियमों के, जो उच्च न्यायालय इस निमित्त बनाए, अध्यधीन रहते हुए, इस अधिनियम के अधीन सब कार्यवाहियां सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 से यथाशक्य नियमित होंगी ।

[2][**40क. कुछ मामलों में अर्जियों को अन्तरित करने की शक्ति** – (1) जहां –

(क) इस अधिनियम के अधीन कोई अर्जी अधिकारिता रखने वाले जिला न्यायालय में विवाह के किसी पक्षकार द्वारा धारा 23 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 27 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए पेश की गई है, और

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 50 की धारा 3 द्वारा "तीन दिन की कालावधि" प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 38 द्वारा अंत:स्थापित ।

(ख) उसके पश्चात् इस अधिनियम के अधीन कोई दूसरी अर्जी विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा किसी आधार पर धारा 23 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 27 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए चाहे उसी जिला न्यायालय में अथवा उसी राज्य के या किसी भिन्न राज्य के किसी भिन्न जिला न्यायालय में पेश की गई है,

वहां ऐसी अर्जियों के संबंध में उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट रीति से कार्यवाही की जाएगी ।

(2) ऐसे मामले में जिसे उपधारा (1) लागू होती है, –

(क) यदि ऐसी अर्जियां एक ही जिला न्यायालय में पेश की जाती हैं, तो दोनों अर्जियों का विचारण और उनकी सुनवाई उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ की जाएगी ;

(ख) यदि ऐसी अर्जियां भिन्न-भिन्न जिला न्यायालयों में पेश की जाती हैं तो बाद वाली पेश की गई अर्जी उस जिला न्यायालय को अंतरित की जाएगी जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी और दोनों अर्जियों की सुनवाई और उनका निपटारा उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ किया जाएगा जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी ।

(3) ऐसे मामले में, जिसे उपधारा (2) का खंड (ख) लागू होता है, यथास्थिति, वह न्यायालय या सरकार, जो किसी वाद या कार्यवाही को उस जिला न्यायालय से, जिसमें बाद वाली अर्जी पेश की गई है, उस जिला न्यायालय को जिसमें पहले वाली अर्जी लंबित है, अंतरित करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन सक्षम है, ऐसी बाद वाली अर्जी का अंतरण करने के लिए अपनी शक्तियों का वैसे ही प्रयोग करेगी मानो वह उक्त संहिता के अधीन ऐसा करने के लिए सशक्त की गई है ।

40ख. इस अधिनियम के अधीन दी जाने वाली अर्जियों के विचारण और निपटारे के संबंध में उपबंध – (1) इस अधिनियम के अधीन अर्जी का विचारण, जहां तक कि न्याय के हित में संगत रहते हुए, उस विचारण के बारे में, साध्य हो दिन प्रतिदिन तब तक निरंतर चालू रहेगा जब तक कि वह, समाप्त न हो जाए किन्तु उस दशा में नहीं जिसमें न्यायालय विचारण का अगले दिन से परे के लिए स्थगन करना उन कारणों से आवश्यक समझे

जो लेखबद्ध किए जाएंगे ।

(2) इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक अर्जी का विचारण जहां तक संभव हो शीघ्र किया जाएगा और प्रत्यर्थी पर अर्जी की सूचना की तामील होने की तारीख से छह मास के अंदर विचारण समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

(3) इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक अपील की सुनवाई जहां तक संभव हो शीघ्र की जाएगी और प्रत्यर्थी पर अपील की सूचना की तामील होने की तारीख से तीन मास के अंदर सुनवाई समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

40ग. दस्तावेजी साक्ष्य – किसी अधिनियम में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी यह है कि इस अधिनियम के अधीन अर्जी के विचारण की किसी कार्यवाही में कोई दस्तावेज साक्ष्य में इस आधार पर अग्राह्य नहीं होगी कि वह सम्यक् रूप से स्टांपित या रजिस्ट्रीकृत नहीं है ।]

41. प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियम बनाने की उच्च न्यायालय की शक्ति – (1) उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) और इस अधिनियम के उपबंधों से संगत ऐसे नियम, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बनाएगा जो वह अध्याय 5, 6 और 7 के उपबंधों को क्रियान्वित करने के प्रयोजन के लिए समीचीन समझे ।

(2) विशिष्टत: और पूर्वगामी उपबंध की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियम निम्नलिखित के लिए उपबंध करेंगे, –

(क) जारकर्म के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी में जारकर्मी को भी सहप्रत्यर्थी के रूप में वाद का पक्षकार बनाना और वे परिस्थितियां जिनमें अर्जीदार ऐसा करने से अभिमुक्त किया जा सकेगा ;

(ख) ऐसे किसी सहप्रत्यर्थी के विरुद्ध नुकसानी अधिनिर्णीत करना ;

(ग) अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन की किसी कार्यवाही में, उसके पहले से ही पक्षकार न होने वाले किसी व्यक्ति द्वारा मध्यक्षेप ;

(घ) विवाह की अकृतता के लिए या विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी का प्ररूप और अर्न्तवस्तु तथा ऐसी अर्जियों के पक्षकारों द्वारा उपगत खर्चों का दिया जाना ; तथा

(ङ) कोई अन्य ऐसा विषय जिसके लिए इस अधिनियम में कोई उपबंध या पर्याप्त उपबंध नहीं किया गया है और जिसके लिए भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 (1869 का 4) में उपबंध किया गया है ।

अध्याय 8
प्रकीर्ण

42. व्यावृत्ति – इस अधिनियम की कोई बात किसी ऐसे विवाह की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगी जो इसके उपबंधों के अधीन अनुष्ठापित न किया गया हो ; और न इस अधिनियम के बारे में यह समझा जाएगा कि वह विवाह करने के किसी ढंग की विधिमान्यता पर प्रत्यक्षत: या परोक्षत: प्रभाव डालती है ।

43. विवाहित व्यक्ति के इस अधिनियम के अधीन पुन: विवाह करने के लिए शास्ति – अध्याय 3 में अन्यथा उपबंधित के सिवाय, प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के बारे में, जो उस समय विवाहित होने पर भी इस अधिनियम के अधीन अपना विवाह अनुष्ठापित कराएगा, यह समझा जाएगा कि उसने भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की, यथास्थिति, धारा 494 या धारा 495 के अधीन अपराध किया है, और ऐसे अनुष्ठापित विवाह शून्य होगा ।

44. द्विविवाह के लिए दंड – प्रत्येक व्यक्ति जिसका विवाह इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित हुआ हो और जो पति या पत्नी के जीवनकाल में दूसरा विवाह करेगा, पति या पत्नी के जीवनकाल में पुन: विवाह करने के अपराध के लिए भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 494 और धारा 495 में उपबंधित शास्तियों का भागी होगा और ऐसे किया गया विवाह शून्य होगा ।

45. मिथ्या घोषणा या प्रमाणपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए शास्ति – प्रत्येक व्यक्ति, जो इस अधिनियम के अधीन या उसके द्वारा अपेक्षित कोई ऐसी घोषणा करे या प्रमाणपत्र बनाए, या ऐसी घोषणा या प्रमाणपत्र हस्ताक्षरित करे या अनुप्रमाणित करे जिसमें ऐसा कथन हो जो मिथ्या हो और या तो जिसके बारे में वह जानता हो या विश्वास करता हो कि वह मिथ्या है या जिसके सत्य होने का उसे विश्वास न हो, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 199 में वर्णित अपराध का दोषी होगा ।

46. विवाह अधिकारी के दोषपूर्ण कार्य के लिए शास्ति – कोई विवाह अधिकारी जो इस अधिनियम के अधीन विवाह का अनुष्ठापन :–

(1) उस विवाह के बारे में धारा 5 द्वारा अपेक्षित सूचना प्रकाशित किए बिना ; अथवा

(2) ऐसे विवाह की सूचना के प्रकाशन की तारिख से तीस दिन के भीतर, अथवा

(3) इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के उल्लंघन में,

जानते हुए और जानबूझकर करेगा वह सादे कारावास से, जो एक वर्ष तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

47. विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक का निरीक्षण के लिए उपलब्ध रहना – (1) इस अधिनियम के अधीन रखी जाने वाली विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक सभी उचित समयों पर निरीक्षण के लिए उपलब्ध रहेगी और उसमें अंतर्विष्ट कथनों के साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होगी ।

(2) विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक में से प्रमाणित उद्धरण विवाह अधिकारी, आवेदन किए जाने पर और आवेदक द्वारा विहित फीस दिए जाने पर उसे देगा ।

48. विवाह अभिलेखों की प्रविष्टियों की प्रतिलिपियों का भेजा जाना – राज्य का प्रत्येक विवाह अधिकारी उस राज्य के जन्म, मृत्यु और विवाह के महारजिस्ट्रार को, ऐसे अंतरालों पर और ऐसे प्ररूप में, जो विहित किए जाएं, उन सब प्रविष्टियों की सही प्रतिलिपि भेजेगा जो उसने ऐसे अंतिम अंतराल के बाद विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक में की हों और उन राज्यक्षेत्रों से बाहर के, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, विवाह अधिकारियों की दशा में सही प्रतिलिपि ऐसे प्राधिकारी को भेजी जाएगी जैसा केन्द्रीय सरकार इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ।

49. गलतियों का ठीक किया जाना – (1) कोई विवाह अधिकारी, जो विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक की किसी प्रविष्टि के प्ररूप या सार में किसी गलती का पता चलाए, उस गलती का पता चलने के पश्चात् एक मास के भीतर उन विवाहित व्यक्तियों के समक्ष या उनकी मृत्यु या उनके अनुपस्थित होने की दशा में दो अन्य विश्वसनीय साक्षियों के समक्ष, उस गलती के पार्श्व में प्रविष्टि करके और मूल प्रविष्टि में परिवर्तन किए बिना, उसे ठीक कर सकेगा और पार्श्व प्रविष्टि पर हस्ताक्षर करेगा और उसमें ऐसे ठीक करने की तारीख जोड़ेगा और विवाह अधिकारी उसके प्रमाणपत्र

(2) इस धारा के अधीन गलती ठीक करने की प्रविष्टि उन साक्षियों द्वारा, जिनके समक्ष वह की गई हो, अनुप्रमाणित की जाएगी ।

(3) जहां प्रविष्टि की प्रतिलिपि धारा 48 के अधीन महारजिस्ट्रार या अन्य प्राधिकारी को पहले ही भेज दी गई हो वहां विवाह अधिकारी मूल गलत प्रविष्टि और उसकी पार्श्विक शुद्धियों का वैसी ही रीति से पृथक् प्रमाणपत्र बनाएगा और भेजेगा ।

50. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार के [1]*** अधिकारियों की दशा में केन्द्रीय सरकार और सब अन्य दशाओं में राज्य सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम[2], शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टत: और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियम निम्नलिखित विषयों के लिए या उनमें से किसी के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् : –

(क) विवाह अधिकारियों के कर्तव्य और उनकी शक्तियां और वे क्षेत्र जिनमें वे अधिकारिता का प्रयोग कर सकेंगे ;

(ख) वह रीति जिससे विवाह अधिकारी इस अधिनियम के अधीन जांच कर सकेगा और उसके लिए प्रक्रिया ;

(ग) वह प्ररूप जिसमें और वह रीति जिसे इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन अपेक्षित पुस्तकें रखी जाएंगी ;

(घ) वे फीसें जो विवाह अधिकारी पर इस अधिनियम के अधीन अधिरोपित किसी कर्तव्य के पालन के लिए उद्गृहीत की जा सकेंगी ;

(ङ) वह रीति जिससे धारा 16 के अधीन लोक सूचना दी जाएगी ;

(च) वह रीति जिससे और वे अंतराल जिनके भीतर विवाह-प्रमाणपत्र पुस्तक की प्रविष्टियों की प्रतिलिपियां धारा 48 के अनुसरण में भेजी जाएंगी ;

---

[1] 1969 के अधिनियम सं. 33 की धारा 29 द्वारा "राजनयिक और कौंसलीय अधिकारियों और अन्य" शब्दों का लोप किया गया ।

[2] विशेष विवाह (राजनयिक और कौंसलीय अधिकारी) नियम, 1954 के लिए देखिए भारत का राजपत्र, 1955, भाग 2, खंड 3, पृ. 1517 ।

(छ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाए या जिसका विहित जाना अपेक्षित हो ।

[1][(3) इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप ही में प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(4) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने पर, यथाशीघ्र, राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।]

51. निरसन और व्यावृत्तियां – (1) विशेष विवाह अधिनियम, 1872 (1872 का 3) को और विशेष विवाह अधिनियम, 1872 की किसी तत्स्थानी विधि को, जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पहले किसी भाग ख राज्य में प्रवृत्त हो, एतद्द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, –

(क) विशेष विवाह अधिनियम, 1872 (1872 का 3) या ऐसी किसी तत्स्थानी विधि के अधीन सम्यक् रूप से अनुष्ठापित सब विवाह इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित समझे जाएंगे ;

(ख) वैवाहिक मामलों और विषयों के सब वाद और कार्यवाहियां जो इस अधिनियम के प्रवर्तन में आने के समय किसी न्यायालय में लंबित हों उस न्यायालय द्वारा यावत्शक्य ऐसे निपटायी या विनिश्चित की जाएंगी मानो वे मूलत: उसमें ही इस अधिनियम के अधीन संस्थित की गई हों ।

(3) उपधारा (2) के उपबंध साधारण खंड अधिनियम, 1897 (1897

---

[1] 1983 के अधिनियम सं. 20 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15.3.1984 से) अंत:स्थापित ।

का 10) की धारा 6 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेंगे और उक्त धारा 6 के उपबंध तत्स्थानी विधि के निरसन को भी ऐसे ही लागू होंगे मानो वह तत्स्थानी विधि अधिनियमित हो ।

प्रथम अनुसूची

[धारा 2(ख) देखिए]

प्रतिषिद्ध कोटि की नातेदारी

भाग 1

1. माता
2. पिता की विधवा (सौतेली माता)
3. माता की माता
4. माता के पिता की विधवा (सौतेली नानी)
5. माता की माता की माता
6. माता की माता के पिता की विधवा (सौतेली परनानी)
7. माता के पिता की माता
8. माता के पिता के पिता की विधवा (सौतेली परनानी)
9. पिता की माता
10. पिता के पिता की विधवा (सौतेली दादी)
11. पिता की माता की माता
12. पिता की माता के पिता की विधवा (सौतेली परनानी)
13. पिता के पिता की माता
14. पिता के पिता के पिता की विधवा (सौतेली परदादी)
15. पुत्री
16. पुत्र की विधवा
17. पुत्री की पुत्री
18. पुत्री के पुत्र की विधवा
19. पुत्र की पुत्री
20. पुत्र के पुत्र की विधवा

21. पुत्री की पुत्री की पुत्री
22. पुत्री की पुत्री के पुत्र की विधवा
23. पुत्री के पुत्र की पुत्री
24. पुत्री के पुत्र के पुत्र की विधवा
25. पुत्र की पुत्री की पुत्री
26. पुत्र की पुत्री के पुत्र की विधवा
27. पुत्र के पुत्र की पुत्री
28. पुत्र के पुत्र के पुत्र की विधवा
29. बहिन
30. बहिन की पुत्री
31. भाई की पुत्री
32. माता की बहिन
33. पिता की बहिन
34. पिता के भाई की पुत्री
35. पिता की बहिन की पुत्री
36. माता की बहिन की पुत्री
37. माता के भाई की पुत्री

स्पष्टीकरण – इस भाग के प्रयोजनों के लिए "विधवा" पद के अंतर्गत विच्छिन्न-विवाह पत्नी भी है ।

भाग 2

1. पिता
2. माता का पति (सौतेला पिता)
3. पिता का पिता
4. पिता की माता का पति (सौतेला दादा)
5. पिता के पिता का पिता
6. पिता के पिता की माता का पति (सौतेला परदादा)
7. पिता की माता का पिता

8. पिता की माता की माता का पति (सौतेला परदादा)
9. माता का पिता
10. माता की माता का पति (सौतेला नाना)
11. माता के पति का पिता
12. माता के पिता की माता का पति (सौतेला परनाना)
13. माता की माता का पिता
14. माता की माता की माता का पति (सौतेला परनाना)
15. पुत्र
16. पुत्री का पति
17. पुत्र का पुत्र
18. पुत्र की पुत्री का पति
19. पुत्री का पुत्र
20. पुत्री की पुत्री का पति
21. पुत्र के पुत्र का पुत्र
22. पुत्र के पुत्र की पुत्री का पति
23. पुत्र की पुत्री का पुत्र
24. पुत्र की पुत्री की पुत्री का पति
25. पुत्री के पुत्र का पुत्र
26. पुत्री के पुत्र की पुत्री का पति
27. पुत्री की पुत्री का पुत्र
28. पुत्री की पुत्री की पुत्री का पति
29. भाई
30. भाई का पुत्र
31. बहिन का पुत्र
32. माता का भाई
33. पिता का भाई
34. पिता के भाई का पुत्र

35. पिता की बहिन का पुत्र

36. माता की बहिन का पुत्र

37. माता के भाई का पुत्र

स्पष्टीकरण – इस भाग के प्रयोजनों के लिए "पति" पद के अन्तर्गत विच्छिन्न-विवाह पति भी है ।

द्वितीय अनुसूची

(धारा 5 देखिए)

आशयित विवाह की सूचना

.....जिला के विवाह अधिकारी ।

हम एतद्द्वारा आपको सूचना देते हैं कि इसकी तारीख से तीन कलेंडर मास के भीतर हम दोनों का परस्पर विवाह विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अधीन अनुष्ठापित होना आशयित है ।

नाम	स्थिति	उपजीविका	आयु	रहने का स्थान	यदि रहने का वर्तमान स्थान स्थायी न हो तो रहने का स्थायी स्थान	निवास की अवधि
क. ख.	अविवाहित विधुर विच्छिन्न-विवाह					
ग. घ.	अविवाहित विधवा विच्छिन्न-विवाह					

आज सन् 19.....के.....मास के .....दिन हमने हस्ताक्षर किए ।

(हस्ताक्षर) क. ख.

(हस्ताक्षर) ग. घ.

तृतीय अनुसूची
(धारा 11 देखिए)
वर द्वारा की जाने वाली घोषणा

मैं क. ख., एतद्द्वारा निम्नलिखित घोषणा करता हूं :–

1. मैं इस समय अविवाहित (या, यथास्थिति, विधुर या विच्छिन्न-विवाह) हूं ।

2. मैंने.....वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है ।

3. मेरी ग. घ. (वधु) से प्रतिषिद्ध कोटि की नातेदारी नहीं है ।

4. मैं यह जानता हूं कि यदि इस घोषणा में कोई कथन मिथ्या हुआ और यदि ऐसा कथन करते समय मैं यह जानता होऊं या विश्वास करता होऊं कि वह मिथ्या है या उसके सत्य होने का मुझे विश्वास न हो तो मैं कारावास से और जुर्माने से भी दंडनीय होऊंगा ।

(हस्ताक्षर) क. ख. (वर)

वधु द्वारा की जाने वाली घोषणा

मैं, ग. घ., एतद्द्वारा निम्नलिखित घोषणा करती हूं :–

1. इस समय अविवाहित (या, यथास्थिति, विधवा या विच्छिन्न-विवाह) हूं ।

2. मैंने.....वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है ।

3. मेरी क. ख. (वर) से प्रतिषिद्ध कोटि की नातेदारी नहीं है ।

4. मैं यह जानती हूं कि यदि इस घोषणा में कोई कथन मिथ्या हुआ, और यदि ऐसा कथन करते समय मैं यह जानती होऊं या विश्वास करती होऊं कि वह मिथ्या है या उसके सत्य होने का मुझे विश्वास न हो तो मैं कारावास से और जुर्माने से भी दंडनीय होऊंगी ।

(हस्ताक्षर) ग. घ. (वधु)

ऊपरिनामित क. ख. और ग. घ. द्वारा हमारी उपस्थिति में हस्ताक्षर किए गए । जहां तक हम जानते हैं इस विवाह में कोई विधिपूर्ण बाधा नहीं है ।

(हस्ताक्षर) छ. ज.
(हस्ताक्षर) झ. ञ. | तीन साक्षी
(हस्ताक्षर) ट. ठ.

प्रति हस्ताक्षरित ङ. च.
विवाह अधिकारी

तारीख 19.....के.....मास का.....दिन ।

चतुर्थ अनुसूची

(धारा 13 देखिए)

विवाह का प्रमाणपत्र

मैं, ङ. च. एतद्द्वारा प्रमाणित करता हूं कि 2000.....के.....मास के..... दिन क. ख. और ग. घ.* मेरे समक्ष हाजिर हुए और उनमें से प्रत्येक ने मेरी उपस्थिति में और उन तीन साक्षियों की उपस्थिति में, जिन्होंने इसमें नीचे हस्ताक्षर किए हैं, धारा 11 द्वारा अपेक्षित घोषणाएं, कीं और उनका परस्पर विवाह इस अधिनियम के अधीन मेरी उपस्थिति में अनुष्ठापित किया गया ।

(हस्ताक्षर) ङ. च.

.....का विवाह अधिकारी

(हस्ताक्षर) क. ख.

वर

(हस्ताक्षर) ग. घ.

वधु

(हस्ताक्षर) छ. ज.
(हस्ताक्षर) झ. ञ — तीन साक्षी
(हस्ताक्षर) ट. ठ.

तारीख 19.....के.....मास का.....दिन ।

---

* यहां पक्षकारों की विशिष्टियां दीजिए ।

पंचम अनुसूची

(धारा 16 देखिए)

अन्य रूपों में अनुष्ठापित विवाह का प्रमाणपत्र

मैं, ङ. च. एतद्द्वारा प्रमाणित करता हूं कि क. ख. और ग. घ*. 19..... के..... मास के ..... दिन मेरे समक्ष हाजिर हुए और उनमें से प्रत्येक ने मेरी उपस्थिति में जिन्होंने इसमें नीचे हस्ताक्षर किए हैं घोषणा की कि उनका परस्पर विवाह हो चुका है और वे अपने विवाह के समय से पति और पत्नी के रूप में साथ रह रहे हैं और इस अधिनियम के अधीन अपना विवाह रजिस्ट्रीकृत कराने की उनकी इच्छा के अनुसार उक्त विवाह आज.....19.....के.....मास के.....दिन इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया गया है और.....से प्रभावी है ।

(हस्ताक्षर) ङ. च.
..... का विवाह अधिकारी

(हस्ताक्षर) क. ख.
पति

(हस्ताक्षर) ग. घ.
पत्नी

(हस्ताक्षर) छ. ज.
(हस्ताक्षर) झ. ञ — तीन साक्षी
(हस्ताक्षर) ट. ठ.

तारीख 2000.....के.....मास का.....दिन ।

Cover - IV

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	–	–	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. बी. परांजपे - 1990	40	–	–	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	–	–	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	–	–	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	–	–	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	–	–	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	–	–	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	–	–	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	–	–	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	–	–	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	–	–	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	–	–	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	–	–	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	–	–	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	–	–	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	–	290	–
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	–	60	–

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

पी एल डी (सी. डी)-1-2019
भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in